मास्टर ऑफ सोशल वर्क
(M.S.W.)
प्रथम वर्ष

समाज कार्य इतिहास एवं दर्शन
Social Work History & Ideology
(प्रथम प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

समाज कार्य इतिहास एवं दर्शन
(Social Work History & Ideology)

ई–संस्करण 2023–24 / M.S.W. –I - 01

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. भरत मिश्र
कुलपति
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

डॉ. अजय आर. चौरे, म0ग0चि0ग्रा0 विश्वविद्यालय चित्रकूट

डॉ. विनोद शंकर सिंह, म0ग0चि0ग्रा0 विश्वविद्यालय चित्रकूट

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. अजय आर. चौरे,

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. ललित सिंह

डॉ. नीलम चौरे डॉ. राजेश त्रिपाठी

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

शिवांगी त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :
डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

?

समाज कार्य इतिहास एवं दर्शन

इकाई – 1 : समाज कार्य की अवधारणा

इकाई – 2 : समाज कार्य एक व्यवसाय के रूप में

इकाई – 3 : समाज सेवाएँ

इकाई – 4 : समाज सुधार आन्दोलन

इकाई – 5 : शिक्षा का अर्थ

UNIT- I

1.1 समाजकार्य की अवधारणा (Concept of Social Work):-

अवधारणा से हमारा तात्पर्य कुछ विशिष्ट प्रकार की विचारधाराओं से होता है जिस पर कोई कला या विज्ञान आधारित होता है तथा इन्हीं अवधारणाओं के आधार पर उस पूरे विज्ञान अथवा कला के बारे में कल्पना की जा सकती है। आधुनिक युग में समाज कार्य एक व्यवसाय के रूप में विकसित हुआ है और विज्ञान तथा कला के साथ में सर्वत्र स्वीकार किया जा चुका है। अतः समाज कार्य भी कुछ विशिष्ट अवधारणाओं पर आधारित है जो निम्नलिखित है।

(1) समूह में व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञान :–

समाज कार्य के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति एवं उनके सामूहिक व्यवहारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाए। समाज कार्य का कार्य क्षेत्र व्यक्ति है इसलिए उसके व्यवहारों का ज्ञान होना आवश्यक है इस ज्ञान प्राप्ति के लिए अन्य विद्वानों का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरणार्थ – व्यक्ति की आन्तरिक दशाओं एवं व्यवहारों की जानकारी के लिए मनोविज्ञान, सामाजिक स्थिति व सांस्कृतिक दशाओं का व्यक्ति पर प्रभाव जानने के लिए समाजशास्त्र, व्यक्ति की आर्थिक दशाओं के ज्ञान के लिए अर्थशास्त्र तथा उसकी शारीरिक स्थिति की जानकारी के लिए जीव विज्ञान की सहायता ली जाती है।

(2) मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान :–

यह आवश्यक नहीं है कि समाज कार्य सभी विज्ञानों का विशद रूप से ज्ञान प्राप्त करें, वरन् जिसके लिए मात्र व्यक्ति से सम्बन्धित विद्वानों के बारे में कुछ सामान्य जानकारी होना चाहिए, वे भी ऐसी जिनका मनुष्य के जीवन में सामान्य उपयोग होता है। यदि किसी विशेष विज्ञान के बारे में किसी विशेष प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है तो समाज कार्य क्षेत्र का अभ्यासी कार्यकर्ता उस विज्ञान के विशेषज्ञों एवं विद्वानों की सहायता लेता है।

(3) सेवार्थी के आवश्यक तथ्यों की जानकारी देना :–

समाज कार्य के अन्तर्गत व्यवसायिक सेवा प्रदान करने की प्रक्रिया में सामाजिक कार्यकर्ता सैद्धांतिक रूप से समस्या ग्रस्त व्यक्ति को आवश्यक तथ्यों की जानकारी प्रदान करता है। विभिन्न विज्ञानों एवं शास्त्रों के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता किसी सेवार्थी की समस्या एवं उसके कारणों के सम्बन्ध में सेवार्थी तथा अन्य स्त्रोतों द्वारा सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है, जिसमें से आवश्यकतानुसार कुछ तथ्यों से सेवार्थी समस्या ग्रस्त व्यक्ति को

भी आवश्यक ज्ञान व जानकारी प्रदान करता है। साथ ही ध्यान रखता है कि सेवार्थी को समस्या की जानकारी विशिष्ट परिस्थितियों में दी जाए।

(4) सेवार्थी की क्षमताओं में विश्वास :–

हर व्यक्ति में कुछ जन्मजात क्षमताएँ निहित होती है, तथा कुछ क्षमताओं व योग्यताओं का विकास वह अनुभवों के आधार पर करता है। इस सम्बन्ध में सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी की अन्तर्निहित क्षमताओं एवं योग्यताओं में विश्वास करता है तथा उन्हें स्वीकृति प्रदान करता है। सामाजिक कार्यकर्ता यह भी विश्वास करता है कि उचित परामर्श एवं निर्देशन के आधार पर साधनों का ज्ञान हो जाने पर सेवार्थी उनका समुचित उपयोग करके अपनी क्षमताओं व अवरोधों का निराकरण स्वतः करने में समर्थ हो सकेगा। इसी विश्वास के साथ सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी को स्पष्ट रूप से बताने का प्रयास करता है किन–किन साधनों का उपयोग करके वह अपनी समस्या का समाधान करने में सफल हो सकता है।

(5) अन्य उपयोगी साधनों में विश्वास :–

समाज कार्य के अपने साधनों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यकर्ता आवश्यकतानुसार अन्य उपयोगी सामुदायिक साधनों के समुचित उपयोग की क्षमता पर विश्वास रखता है। साथ ही समस्या की प्रकृति को देखते हुए सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी को उन उपलब्ध सामुदायिक साधनों के उपयोग के लिए प्रेरित व निर्देशित करता है। जिनके द्वारा उसकी समस्या का निराकरण वैज्ञानिक ढंग से सम्भव है।

(6) सेवार्थी के व्यक्तित्व को स्वीकार करना तथा आदर देना :–

हर व्यक्ति का व्यक्तित्व अद्‌भुत तथा एक दूसरे से भिन्न कुछ विशिष्टताओं पर निर्भर होता है तथा मानवीय स्वभाव के अनुकूल हर व्यक्ति समाज में उच्चस्तर व आदर का स्थान प्राप्त करने का अभिलाषी होता है। हर व्यक्ति में कुछ विशेषताएँ, अच्छाइयां और साथ ही कुछ बुराइयां या कमियां होती हैं इसी विश्वास के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता समस्याग्रस्त व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा व मान्यता पर विश्वास रखता है।

1.2 समाज कार्य का विस्तार (Scope of Social Work):-

समाज कार्य वर्तमान सदी का एक क्रियात्मक दर्शन है, इसका लक्ष्य व्यक्ति तथा समाज की समस्याओं का निदान और समाधान करना है। इसके विकास क्रम के दौरान इस बात पर बल दिया गया कि उसका लक्ष्य उपस्थित समस्या का समाधान तथा उपस्थित पर्यावरण के साथ समंजन करना है।

समाज कार्य का क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय और अन्तर्प्रजातीय है। इसका पद्धतिशास्त्र मनुष्य के असन्तोष के साथ ही बाधित और असंतुष्ट लोगों की समस्याओं को हल करने के लिए उपयोगी है।

समाज कार्य के क्षेत्र की योजनाओं को मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार की सेवाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(1) सार्वजनिक सहायता :–

सार्वजनिक सहायता प्रार्थी को आर्थिक और सामाजिक जरूरतों के आधार पर की जाती हैं, सहायता केवल जरूरतमंदों को दी जाती है। अतः इसका निर्धारण किसी जीवन साधन जांच द्वारा किया जाता है, अनेक देशों में सहायता की मात्रा प्रायः कानूनों द्वारा भी निर्धारित रहती है। इसके अंतर्गत वृद्ध, अन्धे, असमर्थ तथा निराश्रित बच्चों को सहायता दी जाती है।

(2) सामाजिक बीमा :–

सामाजिक बीमा में बीमाकृत व्यक्तियों तथा उनके परिवारों के सदस्य को वृद्धावस्था तथा उनके परिवारों के सदस्य को वृद्धावस्था बेरोजगारी औद्योगिकी दुर्घटनाएं और व्यावसायिक बीमारियों के अवसर पर सहायता दी जाती है।

(3) पारिवारिक सेवाएँ :–

परिवार हमारे समाज की मूल इकाई है, जिसमें सदस्यों को व्यक्तिगत सन्तुष्टियां मिलती है और शिशु के व्यक्तित्व का विकास होता है, इसके अन्तर्गत वैयक्तिक कार्य, पारिवारिक व व्यक्तिगत सम्बन्ध, विवाह, स्वास्थ्य तथा आर्थिक समस्याओं के लिए सहायता तथा परामर्श दिया जाता है।

(4) बाल कल्याण सेवाएँ :–

इसमें बच्चों के व्यवस्थापन, बाल संस्थाओं का संगठन, नर्सरी तथा देशभाल के केन्द्रों की स्थापना, अनाथ, निराश्रित तथा बाल अपराधी बच्चों का व्यवस्थापन, स्कूल तथा बाल श्रम की रक्षा मुख्य है।

(5) स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सेवाएँ :–

इसके अंतर्गत व्यक्तियों को बीमारी के समय चिकित्सा की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। बाल तथा मातृत्व सम्बन्धी स्वास्थ्य समस्याओं के लिए विशेष रूप से व्यवस्था की जाती है।

(6) मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ :–

इसके अंतर्गत मानसिक बीमारी से ग्रस्त तथा कमजोर मस्तिष्क वाले व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक उपचार के लिए सहायता प्रदान की जाती है।

(7) सुधारात्मक सेवाएँ :–

इसमें बाल अपराधियों के लिए प्रोबेशनल, किशोर न्यायालय बाल रक्षा केन्द्र, जेल सुधार, नाबालिक बच्चों तथा लड़कियों का संरक्षण तथा रक्षा ग्रहों को नियोजित किया जाता है।

(8) युवकों के लिए अवकाशकालीन सेवाएँ :–

सामुदायिक युवक केन्द्र व्यवस्थापन ग्रह तथा मनोरंजन केन्द्रों की स्थापना इस योजना का प्रमुख कार्य हैं। इसके अतिरिक्त युवकों को अवकाशकालीन अवधि का सदुपयोग करने के लिए सामाजिक कल्याण के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

(9) रोजगार सेवाएँ :–

इसके अन्तर्गत रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों को उचित रोजगार को प्राप्त करने में सहायता दी जाती है जो मालिक कर्मचारी की तलाश में होते हैं। उन्हें उचित कर्मचारी प्राप्त करने में मदद दी जाती है।

(10) आवास सेवाएँ :–

इसके अन्तर्गत विभिन्न वर्गों की समस्या को हल करना, गन्दी बस्तियों की सफाई तथा नवीन आवास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए सहायता प्रदान की जाती है।

समाजकार्य एवं अन्य सामाजिक विज्ञान

(Social Work and other Social Science)

1. समाज कार्य तथा समाज शास्त्र :–

समाजशास्त्र का समाज कार्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। समाजशास्त्र का प्रारम्भिक प्रभाव स्पेन्सर के विकासवादी सिद्धांत पर आधारित था जिसके परिणामस्वरूप वैयक्तिक अपूर्णता को सामाजिक समस्याओं का कारण समझा जाने लगा। यहां तक कि जिस संस्था में समाज कार्य का प्रशिक्षण पहली बार प्रारम्भ किया गया उसका नाम स्कूल ऑफ

सोशियालोजी रखा गया था तथा इसके पाठ्यक्रम में समाजशास्त्रियों के सिद्धांत ही प्रमुख रूप से विद्यमान थे।

समाजशास्त्र समाज का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करता है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और इस अर्थ में समाज शास्त्र विभिन्न प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार :– ''सामज शास्त्र सामाजिक विषय के सम्बन्ध में है, सम्बन्धों के जाल को हम समाज कहते हैं''

गिलिन तथा गिलिन के अनुसार :– ''अपने सर्वाधिक व्यापक अर्थ में समाजशास्त्र को जीवित प्राणियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली अतर्क्रियाओं का अध्ययन कहा जा सकता है।''

समाजशास्त्र विशिष्ट रूप में निम्नलिखित से सम्बन्धित है–

1. समाजशास्त्र सेवार्थी के व्यक्तित्व को समझने के लिए वंशानुक्रम एवं पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के कारकों के प्रभाव को स्पष्ट करता है।

2. समाजशास्त्र संस्कृतिक द्वारा सेवार्थी के व्यक्तित्व पर डाले गए विभिन्न प्रकार के प्रभावों को उजागर करता है।

3. समाजशास्त्र संदर्भ समूहों सहित उन विभिन्न समूहों एवं समुदाओं से सम्बन्धित शक्तियों एवं कारकों के सेवार्थी पर प्रभाव को स्पष्ट करता है। जिनसे वह सम्बन्धित होता है।

4. समाजशास्त्र सेवार्थी के व्यक्तित्व में पायी जाने वाली संगठन एवं विघटन की सापेक्ष स्थिति को स्पष्ट करता है।

2. समाज कार्य एवं मनोविज्ञान :–

मनोविज्ञान मन अथवा आत्मा का विज्ञान है, मनोविज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यवहार के रूप में इनके परावर्तन का अध्ययन किया जाता है। समय–समय पर विभिन्न विचारकों द्वारा मनोविज्ञान की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से की गयी है।

मनोविज्ञान चेतन, अर्द्धचेतन एवं अचेतन तीनों स्तरों पर विभिन्न मानसिक क्रियाओं तथा इनके व्यवहार के रूप में परावर्तन का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत संवेदन अवबोधन, संज्ञान, सीखना, स्मरण इत्यादि मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हुए व्यक्ति के व्यवहार का विश्लेषण एवं विवेचन किया जाता है।

समाज कार्य के अंतर्गत एक मनो–सामाजिक समस्या से ग्रस्त सेवार्थी की सहायता प्रदान किए जाने की दृष्टि से मनोविज्ञान निम्नलिखित रूप से सहायता सिद्ध होता है।

1. मनोविज्ञान इस बात की जानकारी कराता है कि व्यक्ति के व्यवहार के सम्प्रेरक क्या है और इनकी प्रकृति क्या है।

2. मनोविज्ञान चेतना के विभिन्न स्तरों पर पायी जाने वाली इच्छाओं आशाओं एवं अभिलाषाओं को स्पष्ट करता है जो मानव व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

3. मनोविज्ञान उन विभिन्न ग्रन्थियों को स्पष्ट करता है जो मानव व्यवहार में असामानता उत्पन्न करती है।

4. मनोविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति की मनोदशाओं तथा उसके संवेगों का उसके व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है।

5. मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार के विविध प्रकारों इनके कारणों लक्षणों एवं उपचारों के उपायों की जानकारी करता है।

3. समाजकार्य तथा सामाजिक मनोविज्ञान :–

समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान की अलग–अलग शाखाओं के रूप में सामाजिक मनोविज्ञान समाज में व्यक्ति की अन्तर्क्रिया एवं व्यवहार का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

किम्बल यंग के अनुसार :– ''सामाजिक मनोविज्ञान एक दूसरे के साथ उनकी अन्तर्क्रियाओं में तथा इस अन्तर्सम्बन्ध के व्यक्ति के विचारों भावनाओं, संवेगों एवं आदतों पर प्रभावों के सन्दर्भ में व्यक्तियों का अध्ययन है।''

इस प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है। सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत सम्प्रेष्णाओं सीखने, अनुकरण, सामाजीकरण व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव, सामूहिक अन्तर्क्रियाओं, संघर्षो, नेतृत्व मनोबल, जनमत प्रचार, संचार, अफवाहों इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

समाज कार्य इस मान्यता के आधार पर सेवार्थी को सहायता प्रदान करता है कि उसकी समस्याएं, विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में उनके द्वारा अनुकूलन पूर्ण व्यवहार कर पाने में असमर्थता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है और यदि इनका प्रभावपूर्ण समाधान किया जाना है तो सेवार्थी के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए उसके अपने व्यक्तित्व एवं पर्यावरण में आवश्यक परिवर्तन किए जाने होंगे।

4. समाज कार्य तथा मानवशास्त्र :–

मानवशास्त्र मनुष्य के शारीरिक स्वरूप प्रजातीय विशेषताओं तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करता है, सामाजिक मानवशास्त्र समाजकार्य के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। क्योंकि इसके अंतर्गत जनजातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित ज्ञान उपलब्ध है। सामाजिक मानवशास्त्र की समाज शास्त्रीय अध्ययनों की एक शाखा जो मुख्य रूप से अपने को जनजातीय समाजों से सम्बन्धित करती है के रूप में माना जा सकता है।

सामाजिक मानवशास्त्र आदिम एवं जनजातीय समाजों के विविध पहलुओं, विशेष रूप से सांस्कृतिक तत्वों का वैज्ञानिक अध्ययन है। इसके अंतर्गत सामाजिक संगठन, संस्थाओं, धर्म, जादू इत्यादि सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन किया जाता है।

5. समाजकार्य तथा अर्थशास्त्र :–

अर्थशास्त्र मानव जीवन के आर्थिक पहलू को वैज्ञानिक अध्ययन करता है ताकि उसे सुख का अनुभव हो सके मार्शल के शब्दों में– ''अर्थशास्त्र मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन है, यह वैयक्तिक एवं सामाजिक क्रिया के उस भाग की जांच करता है जो कल्याण की प्राप्ति तथा इसके लिए आपेक्षित सामग्री के प्रयोग से अत्यधिक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।''

इस प्रकार अर्थशास्त्र मानव व्यवहार के आर्थिक पहलुओं का वैज्ञानिक अध्ययन है जो उसकी सुख एवं समृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। अर्थशास्त्र के अंतर्गत उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय वितरण तथा राजस्व के विविध पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

6. समाज कार्य तथा राजनीतिशास्त्र :–

वर्तमान समय में राजनीति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज जब राज्य की हस्तक्षेप व करने की नीति समाप्त हो गयी है तथा राज्य सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक पहलू को नियोजित एवं नियंत्रित करने का प्रयास कर रहा है। राजनीति सर्वोपरि है, राजनीति के विविध पहलुओं का अध्ययन राजनीतिशास्त्र द्वारा किया जाता है।

राजनीतिशास्त्र किसी भी देश के राजतंत्र को चलाने के लिए सम्पादित की जाने वाली विविध प्रकार की राजनीतिक क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।

1.2 सामाजिक सुरक्षा (Social Socurity):-

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय की परिभाषा के अनुसार ''सामाजिक सुरक्षा एक सुरक्षा द्वारा, उपयुक्त संगठन के माध्यम से, कुछ खतरों से बचने के लिये, जिनके समाज के सदस्य शिकार बनते हैं, प्रदान की जाती है। यह खतरे आवश्यक रूप से वे घटनायें ही हैं,

जिनके लिये एक कम साधनों वाला व्यक्ति केवल अपनी योग्यता अथवा विवेकशीलता से ही अथवा अपने साथियों के साथ व्यक्तिगत संसर्ग से ही व्यवस्था नहीं कर सकता।''

सामाजिक सुरक्षा रक्षा का एक कार्यक्रम है जो समाज द्वारा आधुनिक जीवन के संकटों जैसे रोग, बेरोजगारी, वृद्धावस्था की आश्रिता, औद्योगिक दूर्घटनायें एवं अयोग्यता के समय प्रदान किया जाता है। एक व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती कि ऐसे संकटों से वह अपनी योग्यता तथा दूरदर्शिता से अपनी तथा अपने परिवार की रक्षा कर लेगा।

समाज कल्याण सेवायें (Social Welfare Services):-

समाज कल्याण से तात्पर्य ऐसी सेवाओं से है जो ऐसे व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदायों की उन्नति व विकास के लिये व्यवस्थिति की जाती है। जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक अथवा आर्थिक रूप से बाधित होते हैं तथा अपनी अक्षमता अथवा बाधाओं के कारण समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षाकृत पिछड़े होते हैं। अतः पिछड़े लोगों के विकास व कल्याण के लिये जिन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है उसे हम समाज कल्याण की संज्ञा देते हैं।

समाज कल्याण की अवधारणा से स्पष्ट हो गया है कि यह समूह व व्यक्ति को अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु सक्षम बनाने तथा उन सेवाओं को उपयोग करने के योग्य बनाना है। जिससे उन्हें समुदाय द्वारा वंचित कर दिया गया है। जबकि समाज कल्याण सेवाओं का उपयोग भी ऐसी विशिष्ट सेवाओं के संदर्भ में किया जाता है जो सामान्यता पूर्व स्थापित व उपलब्ध सेवायें जैसे स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा संबंधी सेवा आदि के अंतर्गत प्रदान नहीं की जाती। ऐसा स्वैछिक प्रयासों व सेवाओं पर आधारित व आश्रित होने के कारण होता है। स्वैच्छिक प्रयास इस विश्वास पर जारी रहता है कि उनके द्वारा प्रदान सेवाओं को राज्य सामाजिक सेवाओं व उसके सामान्य उत्तरदायित्व को अपने सेवा क्षेत्र में स्वीकार कर चुकी होती है।

समाज सेवा (Social Service):-

समाज सेवा पद से अर्थ व्यक्ति अथवा समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वैच्छिक समाज सेवकों द्वारा करना है। समाज सेवा के अंतर्गत न तो आवश्यकताओं का विधिवत् अध्ययन किया जाता है न ही साधनों पर विचार किया जाता है। समाज द्वारा प्रदत्त समाज सेवाओं का उपयोग इस प्रकार करें कि समुदाय के सामाजिक व आर्थिक कल्याण को न्यूनतम मानक स्तर की प्राप्ति कर सकें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निर्धनों के उचित स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास की व्यवस्था करना, समाज कार्य में वर्णित समाज सेवायें हैं।

कैसिडी के अनुसार :— समाज सेवाओं के संबंध में कैसिडी ने अपने विचार निम्नलिखित प्रकार से प्रकट किया है।

''समाज सेवायें वे संगठित क्रियायें हैं जो प्राथमिक व प्रत्यक्ष रूप से साधनों को संरक्षण करने उनको सुरक्षित करने व उनमें सुधार लाने में संबंध होती है।''

सामाजिक क्रिया (Social Action):-

सामाजिक क्रिया एक समूह द्वारा (या समूह क्रिया की प्रगति में प्रयत्नशील व्यक्ति द्वारा) वैधानिक रूप से अनुरोध किया है जो कि वैधानिक या सामाजिक दोनों रुपों से वांछित उद्देशें की प्राप्ति के लक्ष्य हेतु की जाती है।

102 एनसाइक्लोपेडिया आफ सोशल वर्क के आधार पर कहा जा सकता है कि ऐसी संस्थाएं व ऐसे सामाजिक नियम व मूल्य जो सामाजिक पर्यावरण में उपस्थित होते हैं, यदि उनमें किसी प्रकार की गड़बड़ी हो तो उसे नया रूप देने, कुछ परिवर्तन करने अथवा उचित होने पर उसी रूप में लागू करने का प्रयास ही सामाजिक क्रिया है जो समस्या समाधान के लिए होती है।

फ्रीडलैण्डर के अनुसार :– ''सामाजिक क्रिया को सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में एक संगठित सामूहिक प्रयास माना है।''

सामाजिक क्रिया के पक्ष :–

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि निम्नलिखित पक्षों पर ही सामाजिक क्रिया का कार्य सम्भव हो सकता है।

1. **सामाजिक अभ्यास में परिवर्तन** :– वर्तमान सामाजिक व्यवहारों व परिस्थितियों में परिवर्तन लाया जाता है अथवा गलत दिशा में हो रहे परिवर्तन को रोकने का प्रयास किया जाता है।

2. **सामाजिक क्रिया द्वारा स्वीकृत लक्ष्य** :– जिस दिशा में परिवर्तन करना होता है या परिवर्तन को रोकने के लिए आन्दोलन होता है वह एक निश्चित लक्ष्य व उद्देश्य की ओर निर्देशित होता है।

3. **कार्यकर्ता के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के प्रयासों का क्रियान्वयन** :– इसमें क्रियाकलापों की बात सम्मिलित होती है जो समुदाय के व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया जाता है अर्थात सामाजिक क्रिया का उत्तरदायित्व कार्यकर्ता पर वही वरन् समुदाय के अन्य सदस्यों पर होता है। कार्यकर्ता मातृ नियंत्रण ही करता है।

4. **सामाजिक क्रिया की विधियां या उपकरण** :– इसके अन्तर्गत अनेक विधियों एवं उपकरण या माध्यम प्रयोग किए जाते हैं। मुख्य रूप से शिक्षा निश्चित दिशा में

प्रचार अनुनय या दबाव आदि को सामाजिक क्रिया के क्रियान्वयन की विधियां या उपकरण स्वीकार किया गया है।

सामाजिक नीति (Social Policy):-

सामाजिक नीति राज्य द्वारा निर्धारित एवं संचालित वे कार्य हैं जो सम्पूर्ण राज्य की जनसंख्या के आर्थिक व सामाजिक स्तर को बनाए रखने तथा विकसित करने के सन्दर्भ में महत्व एवं उत्तरदायित्व पूर्ण प्रक्रिया के अंतर्गत निर्धारित किए जाते हैं, अर्थात् समाज के विकास व कल्याण के लिए सार्वजनिक रूप से कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण कार्यों के समुचित संचालन हेतु दिशा व मार्ग निर्धारण की नीति को ही सामाजिक नीति कह सकते हैं।

सामाजिक नीति को समाज कार्य की महत्वपूर्ण प्रणाली समाज कल्याण प्रशासन एवं नियोजन द्वारा समाज सेवा के रूप में कार्यान्वित किया जाता है, इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज कार्य एवं सामाजिक नीति के बीच ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि समाज की अनुपस्थिति में सामाजिक नीति का समाज सेवा के रूप में परिवर्तन असम्भव है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक नीति के कार्यान्वयन व संचालन में समाज कल्याणकारी संस्थाओं का आधारभूत स्थान व महत्व है। बिना संस्था के कोई भी सामाजिक नीति का संचालन सम्भव नहीं है। अतः सामाजिक नीति को कल्याणकारी संस्थाओं के सन्दर्भ में भी परिमार्जित किया जा सकता है।

समाज सुधार (Social Reform):-

समाज सुधार से तात्पर्य उन कार्यों से है जिनके द्वारा सामाजिक मान्यताओं सामाजिक व्यवहारों के स्वरूप में सुपरिवर्तन लाया जाय। समाज सुधार का प्रमुख उद्देश्य सामान्यतयः संगठन, व्यवहार तथा कार्यों में परिवर्तन द्वारा सुधार करना है। अर्थात सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे में प्रजातान्त्रिक या अन्यथा परिवर्तन लाकर इसे वैधानिक स्वरूप व सामाजिक मान्यता देना ही समाज सुधार है। जैसे सती प्रथा, छुआछूत, बाल विवाह आदि को समाप्त करके सुधार लाने के उद्देश्य से विभिन्न अधिनियम पारित किए गए। वैवाहिक विधि में हिन्दू विवाह अधिनियम द्वारा सुपरिवर्तन व सुधार लाया गया । इस प्रकार मात्र वैधानिक नियन्त्रणों द्वारा ही नहीं वरन् शिक्षा–ज्ञान आदि द्वारा भी समाज सुधार सम्भव है। सामाजिक संस्थाओं, मूल्यों, व्यवहारों एवं संगठनों में किसी भी प्रकार लाभकारी परिवर्तन लाना ही समाज सुधार है।

नटराजन के शब्दों में :– समाज सुधार में सुधारक अपने और दूसरे व्यक्तियों के सामने आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है और सामाजिक प्रगति के लिए

अनुकूल दशाओं का सृजन करता है। सामाजिक सेवाओं में आवश्यक नहीं है कि कार्यकर्ता की एकरूपता उनके साथ की जाए जिनके लिए या जिनके बीच वह कार्य करता है।

समाजिक नियोजन (Social Planning):-

सामाजिक नियोजन का उद्देश्य प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित की गयी मानवीय आवश्यकताओं तथा इनकी पूर्ति के लिए उपलब्ध संसाधनों में सामंजस्य स्थापित करते हुए समाज में सभी लोगों को एक न्यूनतम इच्छित जीवन स्तर का आश्वाजन प्रदान करना तथा समृद्धि, सुख एवं शांति का अनुभव करना है। समाज कार्य का उद्देश्य समस्याग्रस्त व्यक्तियों को इनकी समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करते हुए उन्हें आत्म–सहायता के योग्य बनाना तथा उनकी सामाजिक क्रिया को प्रभावपूर्ण बनाना है। इस प्रकार सामाजिक नियोजन एवं समाज कार्य एक दूसरे से अत्यधिक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। सामाजिक नियोजन समाज कार्य के प्रयोग में लाए जाने के अवसर प्रदान करता है तथा समाज कार्य प्रभावपूर्ण सामाजिक नियोजन के लिए एक साधन का कार्य करता है।

एन.वी. सोवानी के अनुसार :– ''सामाजिक नियोजन भूमि सुधार, असमानता में कमी, आपके सम्पूर्ण वितरण, लोगों तथा क्षेत्रों में कल्याण एवं सामाजिक सेवाओं का विचार अधिक सेवायोजन तथा मात्र एक दूसरे से जुड़ी हुई प्रत्युत एकीकृत योजनाओं एवं नीतियों इत्यादि की एक प्रक्रिया है।''

अतः सामाजिक नियोजन किसी भी रूप में किया गया नियोजन हैं जो सामाजिक व्यवस्था या उसकी अन्तर्सम्बन्धित उपव्यवस्थाओं में पूर्ण या आंशिक रूप से, एक निश्चित दिशा में अपेक्षित परिवर्तन लाने के एक चेतन एवं संगठित प्रयास का परिवर्तन करता है, नियोजन का उद्देश्य एक निश्चित दिशा में परिवर्तन लाने के लिए योजना का निर्माण करना है।

सामाजिक विकास :–

सामाजिक विकास एक व्यापक अवधारणा है जिसमें महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जिन्हें समाज को परिवर्तित करने के लिए सोद्देश्यपूर्ण क्रिया के एक अंश के रूप में लागू किया जाता है।

सामाजिक विकास समाज के सदस्यों को इस प्रकार विकसित करने की प्रक्रिया है कि उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके, सेवा योजन योग्य व्यक्तियों को सेवा योजन कार्य के उपयुक्त अवसर उपलब्ध हो सके वे कार्य की न्यायोचित एवं मानवीय परिस्थितियों में अपने समाज के उद्देश्य की प्राप्ति में अपना पूर्ण योगदान दे सके और वे

अपने द्वारा दिए गए अंशदान तथा सामाजिक न्याय की आवश्यकताओं के अनुसार अपने श्रम के लाभों में साम्यपूर्ण अंश प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

इस अर्थ में सामाजिक विकास के अंतर्गत समाज और व्यक्ति दोनों का सर्वांगीण विकास सन्निहित होने के कारण इसके लिए अपेक्षित विभिन्न पहलुओं तथा स्वच्छ पेय जल, पोषाहार, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, रोजगार कार्य की उपर्युक्त शर्तें एवं परिस्थितियां मनोरंजन तथा खेल इत्यादि में चेतन, संगठित एवं नियोजित रूप से वांछित दिशा में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है।

सामाजिक न्याय (Scial Justice) :-

जब कभी न्याय अथवा अन्याय की चर्चा होती है तो सामान्यतया इसमें तीन बातों का उल्लेख होता है। एक तो वह पक्ष (व्यक्ति या समूह) जिसके साथ न्याय या अन्याय हुआ या हो रहा है। दूसरा वह पक्ष (व्यक्ति, समूह, राज्य, कोई संस्था या समाज) जिसने पहले पक्ष के साथ न्याय या अन्याय किया या कर रहा है। तीसरा दूसरे पक्ष द्वारा पहले पक्ष के साथ किया जाने वाला बर्ताव वह सामान्यतया अन्यायपूर्ण तब होता है जब दूसरे पक्ष ने पहले पक्ष के साथ भेदभाव वार्ता हो या उसके जायज अधिकारों को नकारा हो अथवा उन्हें सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया तो हो किन्तु उनका व्यवहारिक लाभ उठाने से वंचित किया हो।

मोटेतौर पर निष्पक्ष या पक्षपात रहित बर्ताव न्याय है। जब ऐसा व्यवहार समाज अपने सभी वर्गों उपवर्गों के साथ करता है तो उसे सामाजिक न्याय कहते हैं। सामाजिक न्याय की विवेचना में न्याय सम्बन्धी नियमों की रचना, उनकी व्याख्या और उन्हें लागू करना सम्मिलित है।

सामाजिक न्याय की विवेचना में किसी समाज के उन पक्षों का अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिन पर यह निर्भर करता है। सामाजिक न्याय के मुख्यतः तीन आधार है– नियमत आधार, संरचनात्मक आधार तथा भौतिक आधार।

सामाजिक न्याय किसी समय पर किसी समाज जिसके संदर्भ में न्याय की व्याख्या की जा रही है के ढांचे उसकी भौतिक दशा और उनकी संस्कृति विशेष रूप से उसके संस्थागत नियम और मूल्य संरचना पर निर्भर करता है।

UNIT-II

समाज कार्य एक व्यवसाय के रूप में
(Social Work as a Profession)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

''समाज कार्य के उदय में व्यक्तिगत भावनाओं से प्रेरित होकर किसी विपन्नावस्था से पीड़ित अथवा कठिनाइयों या समस्याओं से ग्रस्त व्यक्ति को प्रत्यक्षरूप से सहायता प्रदान करना।'' अथवा धार्मिक संस्थाओं एवं भावनाओं को प्राचीनकाल में समाज का स्त्रोत कहा जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में समान कार्य की गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को सहायता दान–पुण्य, परोपकार या समाज सुधार आदि की संज्ञा दी जाती थी, इसी प्रकार मध्यकालीन युग में समाज कार्य मानवता आधार पर किया जाता रहा। भारत में समाज कार्य की एक लम्बी श्रृंखला है। धीरे–धीरे, धर्म दान–दया और मानवता के आधार पर निर्धनों, रोगियों निराश्रितों, अपंगों आदि की सेवा व्यक्तिगत भावनाओं से प्रेरित होकर करने की धारणा में परिवर्तन आया। यहां तक कि आधुनिक युग में समाज कार्य करने के उद्देश्य से विभिन्न संगठन व संस्थाओं की स्थापना हुई। समाज कार्य को व्यवसायिक ढंग से निष्पादित करने के उद्देश्य से सामाजिक कार्यकताओं के लिए विशिष्ट शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं ने जन्म लिया । अब समाज कार्य व्यक्तिगत भावनाओं एवं धारणाओं तक सीमित नहीं रह गया, कार्य प्रणाली, उद्देश्य तथा सेवा के स्वरूप में परिवर्तन आया। व्यक्तियों समूहों एवं समुदायों की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्या समाधान एक वैज्ञानिक ज्ञान, दर्शन, सिद्धान्त एवं आचार संहिता के आधार पर प्रदान करने के लिए संगठन बनाए गए।

उपरोक्तांकित संक्षिप्त विवरण की व्याख्या से स्पष्ट हो जाता कि वास्तव में व्यावसायिक समाज कार्य अभी अपने शैशवाकाल में हैं। यह इस युग में विकसित हुआ एक व्यवसायिक ज्ञान है। समाज कार्य के व्यवसायिक विकास का इतिहास उन्नीसवीं शताब्दी से ही आरम्भ होता है। जिसकी आधारशिला कुछ समाज सुधारकों के वे प्रयास है जिनके द्वारा उन्होंने जन साधारण को अपनी सामाजिक समस्याओं एवं कठिनाइयों के प्रति जागरूक करने, समाज सुधार के उद्देश्य से विधि–विधानों का निर्माण किया गया तथा मानवीय दृष्टि से समस्याग्रस्त व्यक्ति समूह या समुदाय की समस्या समाधान हेतु विभिन्न रूपों में सुधारात्मक आन्दोलन आरम्भ किए गए। इन्हीं आन्दोलनों से इस धारणा का अंकुरण हुआ। समाज कार्य द्वारा समुचित रूप से सेवा प्रदान करने हेतु कार्यकर्ताओं का चयन एवं प्रशिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था की जाय।

उपरोक्त धारणा के फलस्वरूप सर्वप्रथम सन् 1983 ई. में इस बात पर बल दिया गया कि समाज कार्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था की जाय सर्वमान्य रूप से समाज

कार्य प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसके पांच वर्ष बाद सन् 1989 में समाज सेवा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई जो छः (6) सप्ताह की अवधि का प्रशिक्षण – पाठ्यक्रम पर आधारित था, धीरे–धीरे इस क्षेत्र में ज्ञान व अनुभव की वृद्धि हुई। अभ्यासकर्ताओं को अधिक से अधिक ज्ञान एवं कार्य प्रणाली से अवगत कराने के सम्बन्ध में (6) सप्ताह की अवधि कम पाई गई, फलस्वरूप यह प्रशिक्षण छः (6) मास का प्रशिक्षण कर दिया गया फिर भी प्रयास होता रहा और यह समझा गया कि सामाजिक कार्यकर्ताओं का सेवा सहायता प्रदान करने के लिए मानवीय व्यवहार सम्बन्धी विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता है तथा उन्हें विशिष्ट समाज कार्य प्रणालियों का ज्ञान वैज्ञानिक ढंग एवं संगठित रूप से देना आवश्यक है। अन्ततोगत्वा समाज कार्य के प्रशिक्षण हेतु पुरसिद्ध शिक्षा संस्था 'न्यूयार्क स्कूल आफ सोशल वर्क' की स्थापना अमेरिका में की गई। साथ ही अन्य स्थानों पर औपचारिक व्यवसायिक समाज कार्य सम्बन्धी प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करके व्यवसायिक समाज कार्य के औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1983 से समाज कार्य समस्या समाधान के क्षेत्र की व्यवसायिक प्रक्रिया के रूप में विकसित होना आरम्भ हुआ।

व्यवसायिक दृष्टि से समाज कार्य की परिभाषा :–

(1) **ऐंडरसन** :– सर्वप्रथम सन् 1945 में ऐंडरसन ने समाजकार्य को एक व्यावसायिक सेवा के रूप में निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है।

''समाज कार्य एक व्यवसायिक सेवा है जिसका उद्देश्य जन साधारण के व्यक्ति के रूप में अथवा समूह में इस प्रकार सहायता प्रदान करना है कि वे सामुदायिक इच्छाओं व क्षमताओं के समरूप तथा अपनी विशिष्ट इच्छाओं व क्षमताओं के सन्दर्भ में संतोषप्रद सम्बन्ध व जीवन स्तर प्राप्त कर सके।''

(2) **फ्रीडलैण्डर डब्ल्यू.ए.** :– ''समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो मानवीय सम्बन्धों के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान व निपुणता पर आधारित है जो व्यक्तियों की अकेले अथवा समूहों में इस प्रकार सहायता करता है कि वे सामाजिक एवं व्यक्तिगत सन्तुष्टि तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकें।''

व्यवसाय के गुण/विशेषतायें :–

व्यवसाय की यही विशेषतायें ही निर्देशित कर सकती है कि समाज कार्य में उपस्थित है या नहीं। जो निम्नलिखित है–

1. वैज्ञानिक ज्ञान एवं क्रमबद्ध सिद्धांत

2. विशिष्ट प्रणालियों तथा विधियां व प्रविधियां

3. शैक्षिक एवं प्रशिक्षण पद्धतियां

4. व्यावसायिक संगठन एवं समितियां

5. सामुदायिक मान्यता एवं सामाजिक अनुमोदन

6. आचार संहिता

ये सभी मिलकर किसी कार्य को व्यवसायिक बनाती है।

समाज कार्य का दर्शन

समाज कार्य के दर्शन से यह तात्पर्य है कि इसके अर्थ और ज्ञान का वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुतीकरण करते हुये इसके आदर्शों व मूल्यों का सही ढंग से निरूपण किया जाय। दर्शन शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर ''फिलासफी'' शब्द ग्रीक भाषा का शब्द है। 'फिला' का अर्थ है प्रेम और ''सोफिया'' का अर्थ है। बुद्धिमत्ता। इस प्रकार फिलासफी का अर्थ ''बुद्धिमत्ता से प्रेम'' है। बुद्धिमत्ता का तात्पर्य सत्य एवं ज्ञान के अनवरत खोज से है। अतः दर्शन का तात्पर्य विषय विशेष के सन्दर्भ में सत्य और ज्ञान के निरन्तर खोज और इस सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तृतीकरण से है।

समाज कार्य का सम्बन्ध व्यक्ति, व्यक्तियों के समूह तथा समुदाय से है। समाज कार्य व्यक्तियों के बीच समानता चाहता है। इसके लिये उसे कुछ विशिष्ट विश्वासों पर आधारित होकर कार्य करना होता है। समाज कार्य को अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु एक दर्शन की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अनेक मतभेदों के कारण समाज कार्य के दर्शन के सम्बन्ध में भी अनेक तरह के मतभेद परिलक्षित है। विशेष रूप से मानव जीवन से सम्बन्धित मतभेद जैसे जीवन के वास्तविक अर्थ, व्यक्ति, समूह के बीच अन्तर परस्पर सम्बन्धों की प्रकृति, सामाजिक व आर्थिक पद्धति का स्वरूप मानव के स्वस्थ व समायोजित जीवन के लिए इन समस्त देशों का स्वरूप आदि के कारण समाज कार्य दर्शन के विषय में मतभेद हैं। इन्हीं कारणों से समाज कार्य के दर्शन की कोई सर्वानुमति नहीं बन सकती है। जिस प्रकार समाज कार्य की कोई एकमत परिभाषा नहीं दी जा सकी है जो हर देश समाज के युग में समुचित व समान रूप से मान्य हो ठीक उसी प्रकार समाज कार्य का दर्शन भी हर देश व समाज में एक समान स्थितियों का नहीं रह सकता क्योंकि हर देश समाज व युग में संस्कृतियां परिवर्तित रूप में होती हैं और दर्शन में इन्हीं संस्कृतियों की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अतः उस देश की जीवन सम्बन्धी वास्तविकताओं पर आधारित यह दर्शन होगा। लेकिन इन सब के बावजूद यह कहा जा सकता है कि समाज कार्य के दर्शन का एक मौलिक आधार आवश्यक है, जो भिन्न–भिन्न

देशों की आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दशाओं में भिन्नताएं होते हुए भी विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त चरित्र रखता हो ।

''समाज कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत कार्य करने वाला समाज सेवक अपने कार्य अनुभव से कुछ आदर्श एवं मूल्यों को विकसित करता है। समाज कार्य के अर्थों में जब इन्हीं आदर्शों व मूल्यों को एक तर्क संगत प्रणाली के अन्तर्गत स्थापित किया जाता है। तो वह समाज कार्य का दर्शन बन जाता है। इस अध्ययन में समाज कार्य के दर्शन को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा गया है।

समाज कार्य की विचार धारा

अवधारणा से हमारा तात्पर्य कुछ विशिष्ठ प्रकार की विचारधाराओं से होता है, जिस पर कोई कला या विज्ञान आधारित होता है तथा इन्हीं अवधारणाओं के आधार पर उस पूरे विज्ञान अथवा कला के बारे में कल्पना की जा सकती है। आधुनिक युग में समाज कार्य एक व्यवसाय के रूप में विकसित हुआ है और विज्ञान तथा कला के रूप में सर्वत्र स्वीकार किया जा चुका है। अतः समाज कार्य भी कुछ विशिष्ट अवधारणाओं पर आधारित है जो निम्नलिखित हैं।

1. समूह में व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञान :–

समाज कार्य के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति एवं उसके सामूहिक व्यवहारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाए। समाजकार्य का कार्यक्षेत्र व्यक्ति हैं इसलिए उसके व्यवहारों का ज्ञान होना आवश्यक है, इस ज्ञान प्राप्ति के लिए अन्य विज्ञानों का सहारा लेना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, सामाजिक स्थिति व सांस्कृतिक दशाओं का व्यक्ति पर प्रभाव जानने के लिए समाजशास्त्र व्यक्ति की आर्थिक दशाओं के ज्ञान के लिए अर्थशास्त्र तथा उसकी शारीरिक स्थिति की जानकारी के लिए जीव विज्ञान की सहायता ली जाती है।

2 मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान :–

यह आवश्यक नहीं है कि समाज कार्य सभी विज्ञानों का विशद रूप से ज्ञान प्राप्त करे वरन् जिसके लिए मात्र व्यक्ति से सम्बन्धित विज्ञानों के बारे में कुछ सामान्य जानकारी होना चाहिए। वे भी ऐसी जिनको मनुष्य के जीवन में सामान्य उपयोगी होती है तो समाज कार्य क्षेत्र का अभ्यासी कार्यकर्ता उस विज्ञान के विशेषज्ञों एवं विद्यानों की सहायता लेता है।

3. सेवार्थी के आवश्यक तथ्यों की जानकारी देना :–

समाज कार्य के अन्तर्गत व्यावसायिक सेवा प्रदान करने की प्रक्रिया में सामाजिक कार्यकर्ता सैद्धांतिक रूप से समस्याग्रस्त व्यक्ति को आवश्यक तथ्यों की जानकारी प्रदान

करता है। विभिन्न विज्ञानों एवं शास्त्रों के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता किसी सेवार्थी की समस्या एवं उसके कारणों के सम्बन्ध में सेवार्थी तथा अन्य स्त्रोतों के द्वारा सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है। जिसमें से आवश्यकतानुसार कुछ तथ्यों से सेवार्थी समस्याग्रस्त व्यक्ति को भी आवश्यक ज्ञान व जानकारी प्रदान करता है।

4. सेवार्थी की क्षमताओं में विश्वास :–

हर व्यक्ति में कुछ जन्मजात क्षमताएं निहित होती हैं तथा क्षमताओं व योग्यताओं का विकास वह अनुभवों के आधार पर करता है। इस सम्बन्ध में सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी की अन्तर्निहित क्षमताओं एवं योग्यताओं में विश्वास करता है तथा उन्हें स्वीकृति प्रदान करता है।

5. अन्य उपयोगी साधनों में विश्वास :–

समाज कार्य के अपने साधनों के समुचित उपयोग की क्षमता पर विश्वास रखता है। साथ ही समस्या की प्रकृति को देखते हुए सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी को उन उपलब्ध सामुदायिक साधनों के उपयोग के लिए प्रेरित व निर्देशित करता है, जिनके द्वारा उसकी समस्या का निराकरण वैज्ञानिक ढंग से सम्भव हो।

6. सेवार्थी के व्यक्तित्व को स्वीकार करना तथा आदर देना :–

हर व्यक्ति का व्यक्तित्व अद्‌भुत तथा एक दूसरे से भिन्न कुछ विशिष्टताओं पर निर्भर होता है तथा मानवीय स्वभाव के अनुकूल हर व्यक्ति समाज में उच्च स्तर व आदर का स्थान प्राप्त करने का अभिलाषी होता है। हर व्यक्ति में कुछ विशेषताएं अच्छाइयां और साथ ही कुछ बुराइयां या कमियां होती है। इसी विश्वास के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता समस्याग्रस्त व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा व मान्यता पर विश्वास रखता है।

7. गोपनीयता पर आधारित विश्वसनीय सम्बन्ध :–

समाज कार्य के अन्तर्गत सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ उचित रूप से व्यावसायिक व विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित करे। इसके अभाव में कार्यकर्ता न तो समस्या, समस्या का स्वरूप, कारण, परिणाम व सेवार्थी पर प्रभाव आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है। न ही उसकी सामाजिक परिस्थितियों व पर्यावरण का अध्ययन सेवार्थी के सन्दर्भ में कर सकता है जो व्यावसायिक ढंग से सेवा प्रदान करने का आधार होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विश्वसनीय व गोपनीय सम्बन्ध स्थापना ही समाज कार्य द्वारा प्रदान की जाने वाली व्यावसायिक सेवा का आधार है।

2.3 समाज कार्य :–

व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं जहां समाज ने व्यक्ति को मानवीय अस्तित्व प्रदान किया है, वहीं समाज द्वारा निर्धनता, बेकारी जैसी विविध प्रकार की समस्यायें भी उत्पन्न की हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु आदिकाल से ही प्रयास किये जाते रहे हैं। इन्हीं प्रयासों की श्रृंखला में समाज कार्य एक महत्वपूर्ण कड़ी है। समाज कार्य प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक अनुकूलन के मार्ग में आने वाली सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान प्रस्तुत करता है।

सामाजिक कार्य के सिद्धांत

आवश्यकताएं बदलती हैं तो प्रविधियां और दृष्टिकोण में परिवर्तन अपेक्षित होता है। अतः हमारे पास सहायता करने की कोई व्यवस्थित और सुगठित विधि होनी चाहिए ताकि हम सिद्धान्त को अपने पांव पर खड़ा होने योग्य बना सकें। सामाजिक कार्य की नयी प्रवृत्तियों से निम्नलिखित सिद्धांतों का निरूपण हुआ है–

1. समस्याएं अवश्यम्भावी हैं और उनके कारण असमायोजित व्यक्ति कलंकित नहीं होता।

2. अनेक समस्याएं वातावरण तथा परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं जिन पर व्यक्ति का वश नहीं होता।

3. हर समस्या का समाधान सम्भव है क्योंकि ऐसा विश्वास है कि यदि सहायता ठीक ढंग से दी जाए तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती जिसमें असमायोजित व्यक्ति वातावरण से समायोजन स्थापित करने में सफल हो सकता है।

4. आत्म सहायता–सम्बन्धी कार्यों में स्थानीय साधनों का अर्थात् स्थानीय व्यक्ति, धन तथा अन्य वस्तुओं का उपयोग किया जाता है ताकि बाहरी सहायता पर निर्भरता कम से कम हो जाए।

5. जरूरतमंद व्यक्तियों की सहायता समाज में उनके पुनर्वास द्वारा की जानी चाहिये न कि संस्थाओं में भेज कर। संस्थाओं में केवल उन्हीं को रखा जाए जिन्हें मानसिक शारीरिक अथवा सांवेगिक असमायोजन के कारण विशेष उपचार के लिए संस्था में रखना आवश्यक हो।

6. सामाजिक कार्य का उद्देश्य न केवल समस्याओं को हल करना है बल्कि उन्हें उत्पन्न होने से रोकने के उपाय करना भी है। इसके लिए समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों में लोक स्वास्थ्य कार्यक्रम से मिलती–जुलती निरोधात्मक सेवाओं का संगठन किया जाता है।

7. व्यक्ति या समुदाय को जो सहायता दी जाती है उसका प्रयोजन अपनी सहायता आप करने में मदद करना है। अतः व्यक्ति हो या समुदाय वह स्वयं सक्रिय रूप से भाग लेता है। सामाजिक कार्यकर्ता का काम कार्यक्रम के लिए जनसहयोग प्राप्त करना है।

8. सहायता करने के लिए व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का अध्ययन अपेक्षित होता है।

9. सहायता करते सयम व्यक्ति समूह अथवा समुदाय की समस्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

10. जिस व्यक्ति की सहायता करनी हो, उसके साथ सम्बन्ध स्थापना सभी प्रकार के कार्यों के लिए मूलमंत्र है।

UNIT-III

3.1 समाज सेवाएँ (Social Services):-

समाज सेवाएँ वे सेवाएँ हैं जो समाज द्वारा अपने सदस्यों की सुरक्षा तथा मानवीय साधनों (Human Resources)के विकास के संदर्भ में प्रदत्त की जाती है। जिसके अंतर्गत शिक्षा स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था सम्मिलित की जाती है जबकि समाज कार्य का प्राथमिक कार्य समुदाय की इस प्रकार सहायता करना है कि वे समाज द्वारा प्रदत्त समाज सेवाओं का उपयोग इस प्रकार करें कि समुदाय के सामाजिक व आर्थिक कल्याण के न्यूनतम मानक स्तर की प्राप्ति कर सकें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निर्धनों के उचित स्वास्थ्य शिक्षा आवास की व्यवस्था करना समाज कार्य नहीं वरन् समाज सेवाएँ हैं।

According to Cassidy:-

1. कैसिडी के अनुसार :– समाज सेवाओं के संबंध में कैसिडी ने अपने विचार निम्नलिखित प्रकट किया है–

"Social services are these organised activities that are primarily and directly concerned with be conservation, the protection and improvement of human resources."

''समाज सेवाएं वे संगठित क्रियाएँ हैं जो प्राथमिक एवं प्रत्यक्ष रूप से साधनों का संरक्षण करने उनको सुरक्षित रखने तथा उनमें सुधार लाने से सम्बद्ध होती है।''

कैसिडी ने समाज सेवाओं को परिभाषित करते हुये स्पष्ट कर दिया है कि ये वे क्रियाएं होती हैं जो संगठित रूप से मानवीय साधनों की संरक्षा एवं विकास करती हैं। साथ ही उन्होंने इन सेवाओं के अंतर्गत सामाजिक सहायता (Social Assistance), सामाजिक बीमा (Social Insurance) बाल कल्याण (Child welfare), मानसिक स्वास्थ्य (Mental Hygiene) सार्वजनिक स्वास्थ्य (Public Health) मनोरंजन शिक्षा (Education), श्रम संरक्षण (Labour Protection), आवास (Housing), सुधारक (Correctional) आदि सेवाओं को सम्मिलित किया है।

अर्थात् समाज के सामान्य स्तर को ऊँचा उठाने के संदर्भों में किए जाने वाले कार्यों को समाज सेवाओं के रूप में समझा जाता है। सामाजिक सेवाओं में ही समाज कार्य का अभ्यास किया जाता है जैसे एक रुग्णालय समाज सेवा केन्द्र है जहां सामाजिक कार्य कर्ता समाज कार्य की विधियां व ज्ञान के आधार पर समाज कल्याण के लिए व्यवसायिक सेवा प्रदान करता है, अतः हम यह कह सकते हैं, समाज सेवाओं की व्यवस्था बनाए रखने,

संगठन को स्थापित रखने और सुचारू रूप से संचालित करने के उद्देश्य से समाज कार्य का उपयोग किया जाता है

मूर्थी (Moorthy) ने समाज कार्य एवं समाज सेवाओं का अन्तर बहुत ही सूक्ष्म तरीके से करके दोनों के बीच में स्पष्ट रेखांकन कर दिया है।

मूर्थी के अनुसार :– ''जब हम निःसहायों की सहायता करते हैं तो वह समाज सेवा है निःसंतानों को अपनी सहायता स्वयं करने में सहायता करना समाज कार्य है।''

इसके अतिरिक्त मूर्थी ने यह भी कहा कि सभी समाज सेवाएं समाज कार्य नहीं होती परन्तु समाज कार्य द्वारा प्रदान की जाने वाली समस्त सेवाएं समाज सेवा होती हैं। समाज सेवाएं व समाज कार्य के बीच मुख्य अंतर सेवार्थी को सक्षम बनाने वाले तत्वों (Enabling Element) का होता है क्योंकि सक्षम बनाने की प्रक्रिया में वैज्ञानिक ज्ञान विधियों एवं अभ्यास का होना आवश्यक है जो समाज कार्य के अंग स्वरूप हैं परन्तु समाज सेवा में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं पाई जाती।

दान का धार्मिक आधार :–

दान एक सामाजिक क्रिया है यह प्रायः निर्धन वर्गों, जरूरत मंदों को दिया जाता है। 'दान' किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा किसी असहाय व्यक्ति की गई वह सहायता है जिससे वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। अन्य शब्दों में कहें तो दान धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों, पूजा–पाठ आदि कृत्यों के पश्चात् ब्राह्मण, गरीब, निर्धन, जजमान आदि को दिया जाता है। दान का धार्मिक महत्व होता है। इसे समाज सेवा का अंग भी माना जाता है, सेवा कार्य आत्मा की आवश्यकता का पोषण है । उसको निरंतर एवं निर्बाध गति से करते रहना इसलिये आवश्यक है कि उसकी सुरूचि जीवित रहे। किसी पर एहसान करने के लिए दूसरों सहायक और उपकारी बनने केलिए, अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए भी नहीं, यश के लिए भी नहीं, सेवा का प्रयोजन आत्मा की गरिमा का अक्षुण्ण रखने और उसका जीवन साधन जुटाये रखने के लिए है।

सेवा का आधार जितना स्वार्थ युक्त होगा, वास्तव में दूसरों के परामार्थ का, त्याग का होगा उतना ही बड़ा सत्परिणाम भी मनुष्य को प्राप्त होगा। अर्थात् निःस्वार्थ भाव से की गई सहायता दान कहलाती है।

भारतीय समाज में दान का धार्मिक आधार निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

स्यार्त धार्मिक परम्परा में दान को बहुत महत्व दिया है। कलियुग में दान की महिमा के विषय में अनेक कथाएं कही गयी। इसी में ब्राह्मणों को भूमिदान की परम्परा आती है जिससे समाजार्थिक जीवन ने एक नया मोड़ लिया। फिर भी ब्राह्मणों के लिए निर्धनता, सादगी तथा उच्च विचार ही उच्च आदर्श थे।

धार्मिक संस्थाओं की भूमिका :– संघ, मठ तथा मंदिर सामूहिक जीवन के ऐसे प्रतीक हैं जो अपने सदस्यों की सहायता निःस्वार्थ भाव से करते हैं।

बौद्ध संघ :–

बौद्ध संघों को भी भूमि दान की प्रथा लोकप्रिय थी।

धार्मिक प्रेरणा से समाज सेवायें प्रारंभ हुई। अनेक प्रकार के सार्वजनिक कल्याणकारी कार्य सम्पादित किये जाने लगे। उदाहरण के लिए नहरें, तालाब तथा कुंएं खुदवाना, पेड़ लगवाना, मंदिर बनवाना, धर्मशाला तथा आश्रम बनवाना, विद्यालय तथा चिकित्सालय स्थापित करना इत्यादि इन सभी कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य आवागमन से मुक्ति दिलाने वाले मोक्ष तथा सामाजिक स्वीकृति को प्राप्त करना था। अनेक प्रकार की धार्मिक संस्थाओं ने भी सार्वजनिक कल्याण संबंधी कार्य प्रारम्भ किये। अनेक धनवानों ने अपनी सम्पत्ति धार्मिक संस्थाओं को सौंप दी या ट्रस्ट बना दिये जिसके माध्यम से अनेक प्रकार के कल्याणकारी कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे। मुसलमानों के भारत में आने के बाद उनके द्वारा भारतीय सामाजिक व्यवस्था को इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार चलाने का प्रयास किया गया। इस्लाम की ''जकात'' एवं 'खैरात' की अवधारणाओं को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हुई। भारतीय मुसलमान अपनी आय का 2.5 प्रतिशत अनिवार्य रूप से निर्धनों एवं आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों को प्रदान करते रहे हैं। इसी प्रकार से वे स्वैच्छिक रूप से अकिंचनों एवं निराश्रितों को खैरात के रूप में भिक्षा प्रदान करते रहे हैं। अनेक मुसलमान शासकों ने आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों के लिए समय–समय पर अनेक प्रकार की समाज सेवाओं का प्रावधान किया। उदाहरण के लिये रोगियों के उपचार के लिए शिक्षा संस्थायें यात्रियों के लिए बारादरियां एवं मुसाफिर खाने इत्यादि । मस्जिद से संबद्ध मदरसों के रूप में कार्य करने वाली शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना मुसलमान समुदाय न अत्यधिक प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त बूढ़ों, बीमारों और अपंगों की सहायता संयुक्त परिवार करते रहे हैं।

अकबर के शासनकाल में अनेक प्रकार के समाज सुधार किये गये। अकबर ने दीन इलाही चलाया। उसने अपने राज्य को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया। दास प्रथा को समाप्त किया और यात्री कर तथा जजिया कर लगाया ताकि कल्याण संबंधी कार्य सम्पादित किये जा सके। अकबर ने सती प्रथा के सम्बन्ध में भी यह आदेश किया कि यदि कोई विधवा सती न होना चाहे तो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा। उसने द्विपत्नी विवाह पर रोक लगायी तथा विवाह के आयु की सीमा को बढ़ाया ।

संस्था

समाजशास्त्रीय विश्लेषणों में जिन अवधारणाओं का बार–बार प्रयोग किया जाता है, उनमें संस्था एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, इसके विषय में भी सामान्य जनों में भ्रान्त धारणा है।

बोलचाल की भाषा में समाज, समिति, समुदाय, संस्था सभी समानार्थी माने जाते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ये सब एक दूसरे से भिन्न हैं तथा अलग–अलग अर्थ रखते हैं। समाज समुदाय और समिति का समाजशास्त्रीय अर्थ जान लेने पर संस्था का अर्थ समझते हैं। समाजशास्त्र में संस्था से अभिप्राय मनुष्यों के समूह अथवा समिति से कदापि नहीं है।

मनुष्य की अनेक आवश्यकताएं होती हैं। कुछ आवश्यकताएं तो ऐसी हैं जोकि आदिकाल से चली आ रही है। इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए मनुष्यों को नए सिरे से प्रयास नहीं करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित विधियां या तरीके समाज में पूर्व से ही प्रचलित रहते हैं। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज में प्रचलित इन विधियों का अनुकरण मात्र करते हैं। इस प्रकार अनुकरण के कारण प्रायः सभी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति की विधियां पूरे समाज में सदैव प्रचलन में रहती हैं तथा इनका पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरण भी होता रहता है। इन्हीं विधियों, तरीकों या नियमों को संस्था कहते हैं। आवश्यकताओं को पूर्ण करने के उद्देश्य से ही समितियां बनाई जाती हैं। प्रत्येक समिति नियमों के माध्यम से ही अपने सदस्यों की आवश्यकताएं पूरी करती है। अतः समितियों के इन नियमों को भी संस्था कहा जाता है। यहां यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए कि संस्था नियमों की व्यवस्था है, जबकि समिति मनुष्यों का समूह है। इसलिये संस्था अमूर्त है, जबकि समिति मूर्त है। संस्था की अवधारणा को समझने के लिए कुछ परिभाषाओं का अध्ययन उचित होगा।

संस्था की परिभाषाएँ

कुछ परिभाषाएँ निम्नानुसार है :–

1. ई. एस. बोगार्डस :–

''एक सामाजिक संस्था मुख्यतः संस्थापित कार्यविधियों के द्वारा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित सामाजिक संरचना है।''

2. एच.ई. बार्न्स :–

''संस्था वह सामाजिक संस्थान तथा यंत्रवत व्यवस्था है, जिससे मानवीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनेक क्रियाओं को संगठित, निर्देशित किया जाता है।''

3. मेकआइपर व पेज :–

संस्थाएं, सामूहिक क्रिया को प्रगट करने वाली विधियों के स्थापित तरीके अथवा दशाएं हैं।

परिवार समाज की एक आधारभूत संस्था है और एक प्राथमिक समूह है। परिवार एक ऐसी प्राकृतिक संस्था है जहां व्यक्ति का समाजीकरण भी होता है और व्यक्तित्व का निर्माण भी। व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति जहां परिवार में होती है वहीं उसके मानसिक सामाजिक और धार्मिक सोच के विकास की प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिस देश में परिवार संगठित हैं और व्यवस्थित रूप से अपना कार्य करते हैं उस देश के नागरिक केवल महान नहीं होते वरन उस देश की समस्त संस्थायें भी सुचारू रूप से कार्य करती हैं।

भारत में संयुक्त–परिवार शताब्दियों से चले आ रहे हैं। समय और परिस्थितियों के अनुसार इसके ढांचे में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं फिर भी यह भारतीय समाज में आज भी जीवित हैं। पणिक्कर जाति और संयुक्त परिवार की प्रथा के महत्व को इन शब्दों में कहते हैं– ''सैद्धांतिक रूप से असंबद्ध होने पर भी यह दो संस्थायें जाति और संयुक्त परिवार व्यवहारिक रूप में एक दूसरे से इतनी अधिक मिली हुई हैं कि वे एक सामान्य संस्था बन गयी हैं। हिन्दू समाज की इकाई व्यक्ति ही नहीं, संयुक्त परिवार हैं।''

संयुक्त परिवार का अर्थ एवं परिभाषा :–

विभिन्न विद्वानों ने संयुक्त परिवार को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

जौली के अनुसार :– ''न केवल माता–पिता तथा संतानें, भाई तथा सौतेले भाई सामान्य सम्पत्ति पर रहते हैं बल्कि कभी–कभी इसमें कई पीढ़ियों तक की संतानें, पूर्वज तथा समानांतर संबंधी भी सम्मिलित रहते हैं।''

श्रीमती कार्वे के शब्दों में :– ''एक संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है, जो सामान्यतः एक भवन में रहते हैं, जो एक रसोई में पका भोजन करते हैं, जो सामान्य संपत्ति के स्वामी होते हैं और जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं और जो किसी न किसी प्रकार एक दूसरे के रक्त संबंधी हैं।''

संयुक्त परिवार की सामाजिक क्षेत्र में भूमिका :–

इन्हें निम्नलिखित तथ्यों से जाना जा सकता है–

1. सामाजीकरण :–

सामाजीकरण की दृष्टि से संयुक्त परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था है, बच्चों का पालन पोषण इस ढंग से किया जाता है कि वह स्वतः परिवार में होने वाले क्रियाकलापों को सीख ले। उसे परिवार के सभी कार्यों में भाग लेना होता है। आरम्भ से ही परिवार का मुखिया बच्चों को विभिन्न पारिवारिक कार्यों की जानकारी कराता है। इस तरह संयुक्त परिवार समाजीकरण की प्रथम पाठशाला है।

2. पीढ़ियों के ज्ञान का हस्तांतरण :–

संयुक्त परिवार पीढ़ियों के ज्ञान भण्डार का केन्द्र है। वृद्धजनों के पास समाज के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान होता है उनका अनुभव नयी पीढ़ी को दिशा देता है, कार्य करने का तरीका बताता है। समाज से जुड़ने की भावना प्रदान करता है। इनकी शिक्षाएं, उद्देश्य आदर्श और सुझाव परिवार को सम्पन्न और एकता के सूत्र में सभी सदस्यों को बांधते हैं।

3. सहयोग और पारस्परिक सहायता का केन्द्र :–

यह वह पवित्र स्थान है जहां व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे की सहायता करता है और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को पूर्ण करता है। इसका सिद्धांत है एक सब के लिए और सब एक के लिए। यह भावना व्यक्ति को परस्पर सहयोग के लिए प्रेरित करती है।

4. मानसिक संतोष :–

आधुनिक युग में जहां व्यक्ति अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त और पीड़ित हैं वहीं वह संयुक्त परिवार में संतुष्ट है। उसे नगर की तरह वहां तनाव में जीना नहीं पड़ता। उसे न तो कल के भोजन की चिंता है और न नौकरी छूटने का भय है। इस तरह व्यक्ति यहां मानसिक रूप से अधिक संतुष्ट रहता है।

जाति (Caste)

भारत में ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति–प्रथा है। इसके साथ ही यह भारत की एक परम्परागत सामाजिक संस्था भी है तथा सामाजिक संगठन की प्रमुख्स विशेषता भी है। अतः इसके अध्ययन के बिना हम भारतीय सामाजिक संस्थाओं के मूलरूप को नहीं समझ सकते। भारत में जाति ही व्यक्ति के कार्य, प्रस्थिति, उपलब्ध

अवसरों एवं असुविधाओं को तय करती है। इस संदर्भ में प्रो. ए.आर. देसाई का कथन है कि ''भारत में जाति–व्यवस्था ही अधिकांशतः एक व्यक्ति के लिए उसकी प्रस्थिति, कार्यों, अवसरों और प्रतिबंधों के रूप का निर्धारण करती है। जाति–भेद के आधार पर ही ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की प्रणालियों, व्यक्ति के निवास स्थान तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों का निर्धारण होता है। यहां भू स्वामित्व की प्रकृति भी जातीय विभाजन पर ही आधारित है। ग्रामीण क्षेत्र में अनेक कारणवश प्रायः प्रशासकीय कार्य भी जातीय आधार पर ही विभाजित होता है, जाति व्यवस्था ही लोगों के जटिल धार्मिक और धर्म–निरपेक्ष सांस्कृतिक प्रतिमानों को निश्चित करती है।

जाति का अर्थ एवं परिभाषाएँ

(Meaning and Definitions of Caste)

जाति–व्यवस्था प्राचीनकाल से ही भारतीय सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख आधार रही है। इस संदर्भ में जाति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'जात' से मानना अधिक उचित है क्योंकि जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के 'जन्म' या 'जन्म' के परिवार को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। जाति की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत की है। जाति की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

मजूमदार तथा मदान के अनुसार :– 'जाति एक बंद वर्ग है।'

कूले के अनुसार :– ''जब एक वर्ग लगभग पूर्णतया वंशानुक्रमण पर आधारित होता है, तब हम उसे जाति कहते हैं।''

केतकर के अनुसार :– ''जाति एक ऐसा समुदाय है और इसके सदस्य वही होते हैं जो इसमें जन्म लेते हैं, वे सदस्य अपने सामाजिक नियमों के आधार पर अपने समुदाय के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जाति जन्म पर आधारित ऐसा समूह है जो अपने सदस्यों को खान–पान, विवाह, व्यवसाय और सामाजिक सम्पर्क के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबंध मानने के लिए निर्देशित करता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था ऊँच–नींच स्थिति वाले अन्तर्विवाही समूहों में समाज का ऐसा खंडात्मक विभाजन है जिसका आधार जन्म है। ब्राह्मण के घर जन्म लेने वाला ब्राह्मण कहलायेगा तथा शूद्र के घर जन्म लेने वाला शूद्र कहलायेगा।

जाति पंचायत (Caste Panchayat)

जाति पंचायत किसी जाति विशेष की अपनी पंचायत होती है। इस प्रकार की पंचायतों का रूप हमें वैदिक काल से ही देखने को मिलता है। वैदिक काल में कर्मों के अनुसार वर्ण का विभाजन हुआ और कार्यों की पवित्रता और अपवित्रता के साथ–साथ छुआछूत की भावना का जन्म हुआ। अछूत जातियों ने अपने को हिन्दू सामाजिक संरचना या जातीय संरचना से अलग पाया। इसी समय इन अछूत जातियों में असुरक्षा की भावना का जन्म हुआ। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि अछूत जातियों ने अपनी जाति के सदस्यों की सुरक्षा तथा शक्ति पनपाने के लिए तथा अपने जातीय मामलों को स्वयं निपटाने के लिए जाति पंचायत का निर्माण किया।

यह निम्न जातियों में जाति पंचायत के जन्म की पृष्ठभूमि है, पर उच्च जातियों में भी जाति पंचायत पायी जाती है। उच्च जातियों के विभिन्न वर्गों में जैसे–जैसे सामाजिक दूरी व सामाजिक प्रतियोगिता बढ़ती गयी, वैसे–वैसे अपनी जाति के हितों की रक्षा के लिए उच्च जातियों में पंचायत का जन्म हुआ। आज हम ब्राह्मण सभा, कायस्थ सभा अग्रवाल सभा आदि अनेक जातीय संगठन देखते हैं। इनका भी उद्देश्य जातीय सुरक्षा को बनाये रखना एवं उनमें शक्ति उत्पन्न करना ही है।

जाति पंचायत की उत्पत्ति इसीलिये हुई कि उस जाति के सदस्यों के सामान्य हितरों की सुरक्षा हो सके और उनके आपसी झगड़ों का निपटारा जाति में ही हो जाय यही जाति पंचायत की पृष्ठभूमि है। इस प्रकार की जाति पंचायत हमें निम्न जातियों में देखने को मिलती हैं। निम्न जातियां अधिकतर अशिक्षित और गरीब हैं इस कारण वे सरकारी शासन संस्थाओं से परिचित नहीं होती और परिचित होने पर भी सरकारी संस्थाओं में मदद और सुरक्षा प्राप्त करने में धन अधिक व्यय होता है, इसलिये वे उनसे सहायता नहीं प्राप्त कर पाते। वे अपनी सभी समस्याओं को जाति पंचायत द्वारा ही हल करते हैं।

जाति पंचायत की रूपरेखा हमें केवल गांवों में ही देखने को नहीं मिलती बल्कि शहरों में भी देखने को मिलती है। शहरी जाति–पंचायत की पृष्ठभूमि गांवों में पायी जाने वाली जाति–पंचायत से भिन्न होती है।

3.2 रेडिकल सोशल वर्क :–

ब्रिटेन में समाज कार्य को उसके सामाजिक संदर्भों से पृथक कर विचार करते समय ऐसा लगता है कि आज इसका झुकाव सामाजिक क्रिया तथा समाज सुधार संबंधित कार्यों की विवेचना की ओर हो गया और इस नवीन घटनाक्रम को ही रेडिकल सोशल वर्क कहा जाने लगा है।

रेडिकल सोशल वर्क से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन सर्वप्रथम इंग्लैंड से हुआ। समय के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इस संबंध में पर्याप्त तथ्य उपलब्ध होने लगा।

रेडिकल सोशल वर्क व्यवसायिक समाज कार्य को बहुत ही आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं। इस विचारधारा के लोगों का यह मानना है कि सिर्फ तकनकी ज्ञान और विशिष्ट कौशल से ही समस्या का समाधान किया जा सकता है, बिल्कुल निरर्थक है क्योंकि प्रायः सभी प्रकार के तकनीकी पक्ष एवं विशिष्ट क्षमता वाले तत्व जो समाज कार्य के प्रशिक्षण शिक्षण में अपनाये जाते हैं, वे केवल कार्यकर्ता और सेवार्थी के व्यवसायिक सम्बन्ध को ही बढ़ावा देते हैं।

रेडिकल सोशल वर्क इस प्रकार के व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं तकनीकी क्षमता के उपयोग का विरोधी नहीं हैं बल्कि वह समाज कार्य के इस व्यवसायिक स्वरूप जो व्यवसायिक सम्बन्ध कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच स्थापित होता है, उसका विरोध करता है।

रेडिकल सोशल वर्क इस बात में विश्वास रखता है कि व्यवसायिक सम्बन्ध एक स्पष्ट सामाजिक अंतर या विभाजन कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच उत्पन्न करते हैं। वे इस प्रकार यह बतलाते हैं कि उतार–चढ़ाव या पद सोपान वाले सम्बन्ध विकसित करना समाज कार्य का एक अनिवार्य लक्षण हो गया है। रेडिकल सोशल वर्क यह मानता है कि व्यवसायिक समाज कार्य समस्याओं को नौकरशाही के संगठनात्मक स्वरूप के रूप में चिन्हित करके बतलाता है। रेडिकल सोशल वर्क इस विचार से शुरू होता है कि समस्या ग्रस्त जनसंख्या या जनसमूह की समस्याओं की राजनैतिक व आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर जो बड़े या बृहत समाज में पाया जाता है, सुलझाया जा सकता है।

1930–1960 के बीच के रेडिकल प्रैक्टिसनर्स ने यह सोच विकसित की कि पिछड़े वर्गों के लोगों का विकास केवल समुदाय के बृहत् स्तर पर ही किया जा सकता है।

ये रेडिकल प्रैक्टिसनर्स इसलिये राजनैतिक व संगठनात्मक क्षमता के विकास पर जोर देने लगे जिससे समुदाय के वृहत स्तर पर लोगों की क्षमताओं का यथा संभव विकास किया जा सके।

1. इनका प्राथमिक बल आर्थिक और राजनैतिक चरों पर था जो व्यक्ति के अभिक्रियाओं को स्पष्ट करते हैं।

2. वे सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु प्रविधि केन्द्रित ज्ञान पर बल न देकर राजनैतिक और संगठनात्मक कुशलताओं पर विशेष बल देते हैं।

3. संघर्ष के क्षेत्र को परिभाषित करने में उनकी अभिरूचि समाज सेवा के नौकरशाही मूलक संगठनों तक ही केन्द्रित नहीं हैं वरन् उससे ऊपर उठकर वे वृहत् समुदाय में संघर्षों को देखते हैं।

4. वृहत् या बड़े सामाजिक आंदोलन के द्वारा एक प्रकार का नया सम्बल प्रदान करने वाला समूह (Support Group) और परिवर्तन रेडिकल प्रैक्टिसनर्स के क्रिया–कलापों को नवीन रूप में संचालित करने में मदद करता है ।

रेडिकल सोशल वर्क का अर्थ :–

समाज कार्य के सम्बन्ध में अपनाये गये रैडिकल उपागम की परिभाषा कई विज्ञानों के द्वारा दी गयी है। इस में लैण्डेस जोसेफ के अनुसार सोशल वर्क के द्वारा समस्या ग्रस्त व्यक्तियों को अधिकतम सेवा प्रदान करने का प्रयास किया जाता है साथ ही इसके द्वारा कभी–कभी समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की बात भी कही गयी है। जान एफ लांग्रेस ने वैयक्ति सेवा कार्य के संदर्भ में रैडिकल सोशल वर्क की परिभाषा देते हुये कहा कि ऐसे समाजकार्य कर्ता समाज में सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपगम कार्लमार्क्स की सामाजिक विचारधारा से मेल खाता है। वर्ग चेतना का विकास और एक साथ मिलकर सामूहिक रूप से कार्य करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक रूप से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना ही इस उपागम का मूल उद्देश्य है।

भारत में समाजकार्य

मानव समाज के जन्म के साथ ही समाजसेवा का उदय हुआ। आदिकाल में जब विचार एवं आवश्यकता के अनुकूल ही वह अपनी सुरक्षा का अधिक ध्यान देता था। उस समय समाज नहीं थी, वास्तविकता तो यह है कि हमें यह ज्ञात नहीं कि प्राचीन आदिवासी सभ्यता क्या थी ? परन्तु इतिहासकारों ने प्राचीन सभ्यता का वर्णन कथाओं की भांति किया है। उस व्यक्ति समूहों में रहा करता था आखेट करता था और कन्दमूल ही उसका भोजन था। विपत्तियों का सामना वे सामूहिक रूप से करते थे। हम तुम का भेदभाव नहीं था। व्यक्तिगत जीवन न होकर ''समस्त जीवन'' की भावना थी अर्थात् प्राचीन युग एकत्रीकरण का युग था। सभी एक साथ मिलजुलकर सामूहिक रूप से अपनी परिस्थितियों में अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के उद्देश्य से समूह तोड़ कर भाग भी जाते थे। फिर भी मिलजुल कर रहने तथा सहयोग की मनोवृत्ति उपस्थित रहती थी। स्व एवं त्वम् की भावना नहीं देखी जाती थी। अतः सेवा व सहायता किसकी की जाय ? कैसे की जाय ? दान पुण्य तथा कल्याण किसके प्रति किया जाता इस कारण प्रत्यक्ष रूप से समाज सेवा नहीं दिखाई पड़ती। यह युग एकत्रीकरण का युग था, उत्पादन का युग नहीं था, व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना नहीं थी। ''आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति और शक्ति भर कार्य'' के सिद्धांत का पालन होता था। किसी की सहायता कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से नहीं करता था वरन् सम्पूर्ण समूह सामूहिक प्रयासों से सेवा कार्य करते थे। धीरे–धीरे सहयोग की भावना में

अधिक वृद्धि हुई, यद्यपि यह सहयोग परिस्थिति जन्म था परन्तु इसका आधार एवं स्त्रोत जन्मजात मनोवृत्ति के रूप में विद्यमान था।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि ''समाज की सेवा समाज द्वार'' होती दिखाई पड़ती है । ऐतिहासिक विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि आदिमकाल में भी समाज सेवा की प्रवृत्ति पाई जाती थी भले ही उसका स्वरूप आधुनिक समाजकार्य से कितना ही भिन्न क्यों न रहा हो कुछ भी हो आदिमकालीन सामूहिक जीवन की छाप आधुनिक जीवन में भी पाई जाती है जैसे शादी–विवाह के अवसर पर सम्बन्धियों का सहयोग यजमानी प्रथा जो यज्ञ से उत्पन्न हुई है, पुरोहित यज्ञ करवाते थे और यजमान पुरोहितों की सेवा करते थे, यह समाजकार्य का आदिमकालीन स्वरूप था। इन्हीं क्रियाकलापों के आधार पर धर्म का एक विशिष्ट स्वरूप विकसित हुआ।

धार्मिक प्रेरणा से समाज सेवायें प्रारंभ हुई। अनेक प्रकार के सार्वजनिक कल्याणकारी कार्य सम्पादित किये जाने लगे। उदाहरण के लिए नहरें, तालाब तथा कुएं खुदवाना, पेड़ लगवाना मंदिर बनवाना, धर्मशाला तथा आश्रम बनवाना विद्यालय तथा चिकित्सालय स्थापित करना इत्यादि, इन सभी कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य आवागमन से मुक्ति दिलाने वाले मोक्ष तथा सामाजिक स्वीकृति को प्राप्त करना था। अनेक प्रकार की धार्मिक संस्थाओं ने भी सार्वजनिक कल्याण संबंधी कार्य प्रारम्भ किये। अनेक धनवानों ने अपनी सम्पत्ति धार्मिक संस्थाओं को सौंप दी या ट्रस्ट बना दिये जिनके माध्यम से अनेक प्रकार के कल्याणकारी कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे।

मुसलमानों के भारत में आने के बाद उनके द्वारा भारतीय सामाजिक व्यवस्था को इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार चलाने का प्रयास किया गया। इस्लाम की ''जकात'' एवं जैरात'' की अवधारणाओं को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हुई। भारतीय मुसलमान अपनी आय का 2.5 प्रतिशत अनिवार्य रूप से निर्धनों एवं आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों को प्रदान करते रहे हैं इसी प्रकार से वे स्वैछिक रूप से अकिंचनों एवं निराश्रितों को खैरात के रूप में भिक्षा प्रदान करते रहे हैं। अनेक मुसलमान शासकों ने आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों के लिए समय–समय पर अनेक प्रकार की समाज सेवाओं का प्रावधान किया।

उदाहरण के लिए रोगियों के उपचार के लिए चिकित्सालय, बच्चों की शिक्षा के लिए शिक्षा संस्थाएं, यात्रियों के लिए बारादरियों एवं मुसाफिरखाने इत्यादि मस्जिद से संबंध मदरसा के रूप में कार्य करने वाली शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना मुसलमान समुदाय न अधिक प्रचलित रहा है। इनके अतिरिक्त वृद्धों की बीमारियों और अपंगों की सहायता संयुक्त परिवार करते रहे हैं।

अकबर के शासनकाल में अनेक प्रकार के समाज सुधार किये गए। अकबर ने 'दीन ए इलाही' चलाया। उसने अपने राज्यों को धर्म निर्पेक्ष घोषित किया, दास प्रथा को समाप्त किया और यात्री कर तथा जजिया कर लगाया ताकि कल्याण संबंधी कार्य किये जा सकें।

अकबर ने सतीप्रथा के सम्बन्ध में भी यह आदेश दिया कि कोई विधवा सती न होना चाहे तो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य न किया जाय तथा उसने द्विपत्नी विवाह पर भी रोक लगाई।

3.4 इंग्लैण्ड में समाज कार्य का इतिहास :–

ईसाई धर्म के प्रभाव से इंग्लैण्ड में गिरजाघर आदि धार्मिक संस्थाओं के साधनों से रोगियों एवं निर्धनों की देखरेख सेवा एवं उपचार सम्बन्धी सहायता की परम्परा थी। धार्मिक मठों के माध्यम से इस प्रकार की सेवा प्रदान की जाती थी। निःसहायों रोगियों, निर्धनों अपाहिजों एवं निराश्रित बालकों आदि की सहायता एवं सेवा करना धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था।

16वीं शताब्दी के पूर्व सूखा एवं अकाल के दौरान जमीनदारों के द्वारा अनाज या धन वितरित करने के प्रमाण मिलते हैं। परन्तु इस प्रकार का सेवा कार्य नियमित रूप से सरकार द्वारा नहीं किया जाता था। परन्तु 16वीं शताब्दी में गम्भीर रूप से अकाल पड़ा तो जनता की आर्थिक एवं खाद्यान्न समस्या ने अत्यन्त जटिल रूप धारण कर लिया तथा इस स्थिति से निपटने के लिए इंग्लैण्ड निर्धन कानून बनाया गया जिसके द्वारा जमींनदारों पर आखेट (शिकार) करने के दौरान जमीनदारों द्वारा फसल नष्ट होती थी, इसी कानून के द्वारा अन्न (अनाज) का विक्रय मूल्य निश्चित कर दिया गया तथा कृषकों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने खेत व खलिहान आदि की रक्षा के लिए खेतों के किनारे खाई अथवा झाड़ियों की बाढ़ लगा सके। चूंकि यह कानून एलिजाबेथ के शासनकाल में पारित किया गया था इस कारण इसको 'ऐलिजाबेथियन पुअर ला' की संज्ञा दी गई। इस कानून द्वारा निर्धनों तथा खाद्यान्न समस्या से ग्रस्त नागरिकों के हित में सरकार द्वारा प्रथम बार सेवा कार्य किया गया। इसीलिए इस कार्य को राज्य द्वारा किया गया पहला सेवा कार्य माना जाता है। इस कानून के पूर्व राज्य द्वारा सार्वजनिक हित के लिए कोई नियमित सेवा प्रदान करने की व्यवस्था नहीं थी।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विभिन्न उद्योगों में कार्य करने के उद्देश्य से श्रमिकों की एक बड़ी संख्या ग्रामीण अंचलों से नगरों की ओर आकर्षित हुई। इस कारण नगरों में आने वाले इन ग्रामीण नवागन्तुकों के सामने आवास, खाने–पीने समायोजन तथा अन्य पारिवारिक समस्याएं उठ खड़ी हुई।

इंग्लैण्ड में समाज सेवा का क्रमिक विकास :–

इंग्लैण्ड में 17वीं शताब्दी के अन्त तक विभिन्न रूपों में सुधार कार्य प्रारम्भ हो गए थे। हेनरी के शासन काल के दौरान (1535 से 1589) सन् 1535 में राज्य ने एक ऐसी संस्था स्थापित की थी, जिसके द्वारा निर्धनों को काम देने की व्यवस्था की गई थी। इसी प्रकार 1707 से बेकार निर्धनों को काम देने के सन्दर्भ में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से

कर्मशालाओं (श्रम–गृह) की स्थापना की गई थी जिसका विशेष लाभकारी प्रभाव भिक्षुकों पर पड़ा था। इसी सन्दर्भ में सन् 1723 में ब्रिटिश संसद ने एक नियम पारित किया कि स्थानीय संस्थायें चाहें तो श्रमगृहों (कर्मशाला) में भिक्षुकों को रखकर उनसे काम ले तथा उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का क्रय–विक्रय करके उनके विकास व कल्याण के लिए उपयोग में लाए जिसका फल यह हुआ कि उस कार्यक्रम से लाभान्वित होकर बहुत से भिक्षुक स्वावलम्बी बन गए तथा भिक्षावृत्ति का त्याग करके आदरपूर्ण कार्य में लग गए।

सन् 1834 में एक शासकीय आयोग की स्थापना की गई जिसका कार्यक्षेत्र श्रम गृहों (कर्म शालाओं) का निरीक्षण करके सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना था। इस आयोग की संस्तुतियों पर विचार करके निर्धन कानून संशोधन अधिनियम 1834 बनाया गया। जिसमें मुख्य रूप से अधोलिखित तीन व्यवस्थाएं की गई–

1. न्सून अर्हता का सिद्धान्त
2. श्रम गृहों (कर्म–शालाओं के पुनर्नियोजन का सिद्धान्त
3. नियन्त्रण शक्ति का केन्द्रीकरण

इसी योजना के अन्तर्गत सन् 1884 में ही केन्द्रीय आयुक्त बोर्ड का गठन किया गया जिसमें एक सक्रिय मंत्री पद का भी सृजन किया गया। इसके अतिरिक्त सन् 1854 में लंगड़े–लूले तथा अपाहिजों की देखरेख के लिए ब्रिटिश संसद ने एक अन्य समिति की नियुक्ति किया जिसके तत्वाधान में चिकित्सालयों का भी निर्माण किया गया तथा राष्ट्रीय चिकित्सालय सेवा की स्थापना हुई। इस कालावधि में बच्चों से भी काम लिया जाता था। जिसके कारण उनके सर्वांगीण विकास में बाधा आती थी। निर्धन कानून बोर्ड ने राज्य का ध्यान बच्चों की समुचित शिक्षा तथा अत्यधिक बालश्रम की ओर आकर्षित किया तथा इस सामाजिक व प्रशासनिक व्यवस्था की कटुआलोचना की। परन्तु 1848 में बोर्ड ने अपना एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसके फलस्वरूप निर्धन कानून बोर्ड के क्षेत्राधिकार से बच्चों को अलग कर दिया गया।

ब्रिटेन की तत्कालीन सामाजिक सेवाएँ :–

इग्लैंण्ड में अब तक बेरोजगारी का बीमा राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना, अंश–दान वृति तथा श्रमिकों को क्षति पूर्ति वृत्ति से सम्बन्धित जो कानून प्रचलित थे। उन सबका स्थान अब राष्ट्रीय बीमा कार्यक्रम ने ले लिया। जिसके नियमानुसार सम्पूर्ण राष्ट्र में विद्यालय छोड़ने के पश्चात निम्नलिखित तीन श्रेणियों के प्रत्येक व्यक्ति को समस्त व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए अपनी श्रेणी के अनुरूप अंशदान देना अनिवार्य था।

1. नौकरी करने वाला प्रत्येक व्यक्ति

2. अपने निजी कार्य/व्यवसाय में लगे प्रत्येक व्यक्ति

3. बेरोजगार व्यक्ति

उक्त तीनों श्रेणियों में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीय बीमा योजना के द्वारा प्रसूतिकाल बेकारी, कारखानों में कार्य करते समय शारीरिक क्षतिग्रस्त, नौकरी से अवकाश प्राप्त, वैध अभिभावक एवं मृत्यु से सम्बन्धी अनुदान आदि श्रेणियों के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने का अधिक था।

उक्त कार्यक्रम से सम्बन्धित सेवायें निम्न प्रकार वर्गीकृत की जा सकती हैं–

1. पारिवारिक भत्ता

2. राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा

3. राष्ट्रीय सहायता

निजी एवं ऐच्छिक सेवा में यूरोपीय पृष्ठभूमि :–

यूरोप में आधुनिक राज्यों के उदय के पहले गिरजाघरों के माध्यम से परम्परागत सेवा कार्यों की पद्धति का प्रचलन था । धार्मिक उपदेशों के आधार पर व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा दया एवं सहानुभूति की भावना से प्रेरित होकर निर्धन व दरिद्रों को भिक्षा ग्रह विहीनों को आवास तथा रोगियों की चिकित्सा सेवा तथा विश्राम प्रदान करने की व्यवस्था की जाती थी। दान के आधार पर धन संग्रह करके चिकित्सालय चलाये जाते थे जिसमें अनाथ, निराश्रितों व वृद्धरोगियों की चिकित्सा तथा सेवा की जाती थी। पूरे मध्यकाल में धार्मिक संघों एवं समितियों द्वारा निर्धनों व अनाथों का भोजन व आवास प्रदान करने की प्रथा प्रचलित थी ।

एलिजाबेथ कालीन निर्धनता कानून :–

एलिजावेथ के काल में बढ़ती हुई दरिद्रता व निर्धनता तथा पराश्रयता के समापन के लिए निर्धनता कानून बनाकर पूर्व प्रचलित लोक सहायता सम्बन्धी अराजकता के बीच एक नियमितता लाने का प्रयास किया गया परन्तु जर्मनी के हेमबर्ग एवं एलबर्ट फील्ड नामक नगरों में संगठित रूप से सेवा प्रदान करने का कार्य 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। इस क्षेत्र में हेगवर्ग नगर ने एक केन्द्रीय समिति की स्थापना तथा नगर की सेवा कार्य के लिए कई उपविभागों में विभाजन के रूप में सर्वप्रथम कदम उठाया। प्रत्येक उपविभाग में एक ओवरसियर या निरीक्षक की नियुक्ति की गई, जो स्वेच्छा पूर्वक कार्य करने वाले स्वयं सेवकों के सहयोग से व्यवस्थित ढंग से सेवा कार्य करते थे। यह कार्यकर्ता अपने निश्चित निवास करने वाले निर्धनों एवं दरिद्रों से सम्पर्क स्थापित करके

मैत्री पूर्ण घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करके उनकी सहायता करने का प्रयास करते थे। केवल इतना ही नहीं वरन अपने क्षेत्र में गरीबी एवं अन्य कठिनाइयों का अन्वेषण भी करते थे। इस प्रकार कार्यकर्ताओं का गरीबों व निर्धनों से सम्पर्क करना नगर के विभिन्न उपविभागों का विभाजन नगर के समस्त कार्यों का नगर की केन्द्रीय परिषद द्वारा संगठन एवं निर्देशन आदि योजना की महत्वपूर्ण विशेषताएं थी।

केवल एक कार्यकर्ता सरकार द्वारा नियुक्ति प्राप्त एवं वेतनभोगी होता था। जो केन्द्रीय समिति के अध्यक्ष पद पर कार्य करता था।

UNIT-IV

4.1 समाज सुधार आन्दोलन :–

19वीं शताब्दी में धर्म सुधार के साथ–साथ समाज सुधार आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। भारतीय समाज में अनेक बुराइयां एवं कुप्रथाएं फैली हुई थी। जैसे बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा आदि। धार्मिक सुधारकों ने समाज में फैली धार्मिक अंध विश्वासों के अतिरिक्त सामाजिक कुप्रथाओं का भी विरोध किया। राजाराम मोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद सरस्वती, श्रीमती एनी बेसेण्ट आदि सुधारकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय समाज में नव जागरण आया। 19वीं शताब्दी के धर्म सुधारकों द्वारा किये गये प्रयत्नों को चालू रखने के लिए अनेक संस्थाओं तथा समुदायों की स्थापना हुई। इनमें ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि उल्लेखनीय है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज :–

सुधार आन्दोलन में सबसे अधिक प्रभावशाली आन्दोलन आर्य समाज का हुआ। आज भी यह संगठन सर्वाधिक लोकप्रिय है। इस संगठन के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। उनका जन्म काठियावाड़ में 1824 ई. में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था, उन्होंने संस्कृत व्याकरण और वेदों में विद्वता प्राप्त की।

स्वमी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। यह संगठन निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित था–

1. ईश्वर एक है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप निराकर सर्वशक्तिमान, अनन्त निर्विकार, सर्वाधार सर्वव्यापक अमर, सर्वेश्वर, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है।

2. वेद सत्य विधाओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परमधर्म हैं।

3. सत्य को ग्रहण करने और असत्य का त्याग करने के लिए हमेशा तौर रहना चाहिए।

4. सबकी शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति होनी चाहिए ।

5. हितकारी नियम के पालन में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है लेकिन सामाजिक सर्वहितकारी नियम के पालन में वह परतंत्र हैं।

आर्य समाज ने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्र में काफी सुधार लाया। उसने ब्राह्मणों के एकाधिकार का विरोध किया और शुद्धि आन्दोलन, चलाकर

अन्य धर्मावलम्बियों के लिए हिन्दू धर्म का द्वार खोल दिया इसने सामाजिक क्षेत्र में मूर्तिपूजा, छुआछूत जाति–पात, बाल विवाह, बहु विवाह आदि कुरीतियों का घोर विरोध किया। साथ ही इसने विधवा–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह तथा स्त्री शिक्षा का पूर्ण समर्थन किया। स्त्री शिक्षा के लिए आर्य समाज के अधीन कई कन्या पाठशालाऐं स्थापित की गयी हैं।

स्वामी विवेकानन्द : स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के महान शिष्य थे। उनका जन्म 1863 ई. में हुआ था। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे। वे अत्यन्त तेजस्वी व्यक्ति थे तथा भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति थी उन पर रामकृष्ण परमहंस का काफी प्रभाव पड़ा। उन्होंने गूढ़ रहस्यों का चिंतन किया।

उन्होंने 1893 ई. में शिकागो के धर्म सम्मेलन में सक्रिय भाग लिया और अपने पांडित्य का परिचय दिया। उन्होंने सम्मेलन में घोषणा की कि ''वेदान्त संसार का भव्य, व्यापक तथा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। अमेरिका में उन्होंने अनेक शिष्य बनाये।''

उन्होंने समाज सेवा के भी कार्यों में भाग लिया। 1902 ई. में उनका देहावसान हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस संस्था का प्रधान उद्देश्य रामकृष्ण परमहंस के सिद्धान्तों को चारों ओर फैलाना है। इसकी शाखाऐं भारत में जाल सी बिछी हुई हैं। विदेश में भी इसकी शाखायें खुली हुई है। यह संस्था सेवा तथा परोपकार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है, देश के विभिन्न भागों में इसने पाठशालायें, अस्पताल तथा अन्य प्रकार के परोपकारी संस्थाएं स्थापित की हैं। संकटकालीन परिस्थितियों में जैसे– बाढ़ भूकम्प इत्यादि में यह संस्था जनता की अपूर्व सेवा करती है।

रामकृष्ण मिशन का आधार रामकृष्ण परमहंस के सिद्धान्त हैं। जिन्हें स्वामी विवेकानन्द ने विकसित किया। इसके सिद्धान्त है। सब धर्म सच्चे और अच्छे हैं, ईश्वर निर्गुण, अज्ञेय तथा नैतिकता से परे है। मूर्तिपूजा आध्यात्मिक पूजा का रूप है।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस का अपने को अनन्य शिष्य सिद्ध किया । उन्होंने भारतीय संस्कृति को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया। उन्होंने देश भक्ति का भी महान परिचय दिया। मानवता की सेवा के क्षेत्र में उनके सराहनीय कार्य हैं।

20वीं शताब्दी के समाज सुधारक :–

बीसवीं शताब्दी में निम्नलिखित समाज सुधारक आते हैं :–

महात्मा गांधी एक समाज सुधारक के रूप में :–

गांधी जी के विचार में एक अच्छा समाज प्रेम, सद्भाव, धार्मिक, साम्प्रदसयकि समन्वय और समानता पर आधारित होना चाहिये। यदि व्यक्ति के लक्ष्य और साधन पवित्र हैं तो वह अच्छे समाज की स्थापना कर सकता है। उनकी सद् एवं सात्विक समाज निर्माण की कल्पना व्यक्ति की नैतिक कल्पना पर आधारित है।

गांधी जी के सामाजिक विचारों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

(1) वर्ण व्यवस्था :–

प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक ढांचा वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। गांधी जी इस व्यवस्था का समर्थन वैज्ञानिक आधार पर करते हैं। वे इस सामाजिक संरचना के लिए जरूरी मानते थे। वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज को चार वर्णों में बांटा गया – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। कुछ सुधारकों का मानना था कि वर्ण व्यवस्था जन्मगत न होकर कार्यगत होना चाहिए। पर गांधी जी जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था के पक्षधर थे। वे मानते थे कि वंशानुक्रम एक शाश्वत नियम है, वर्ण व्यवस्था किसी भेदभाव को उचित नहीं मानती। गांधी जी भंगी के कार्यों को उतना ही महत्व देते थे जितना कि ब्राह्मण के कार्यों को।

(2) अस्पृश्यता का अंत :–

सामाजिक जीवन में वर्ण व्यवस्था के समर्थक होते हुए गांधी जी ने ऊँच–नींच की भावना का विरोध किया और कहा कि अश्पृश्यता हिन्दू समाज में कोढ़ की भांति है। उन्होंने निम्न जाति को हरिजन अर्थात ''ईश्वर'' को प्राणी की संज्ञा दी। वह सभी को ईश्वर द्वारा बनाया हुआ मानकर सब भेदभावों से ऊपर उठकर देखते थे।

(3) साम्प्रदायिक एकता :– गांधी जी सामाजिक एकता, राष्ट्र की अखंडता को कायम रखने के लिए विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में सामंजस्य बनाये रखने के पक्षधर थे। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता को बनाए रखने के लिए अपने समस्त देश की व्यापक रूप से यात्रा की।

गांधी जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू मुस्लिम एकता को सर्वोपरि स्थान दिया था।

(4) पुरूष नारी उत्थान के पक्षधर :–

19वीं सदी में स्त्रियों में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िवादी परम्पराओं वर्ण प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा, दहेज अशिक्षा आदि ने गांधी जी को द्रवित कर दिया, इसलिए उन्होंने समाज सुधार के अन्तर्गत स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाना भी अपना लक्ष्य रखा।

गांधी जी महिलाओं की सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्ष लेते थे। गांधी जी ने बाल विवाह को अनैतिक और विधवा विवाह को नैतिक कहा।

(5) विवाह संबंधी विचार :–

गांधी जी विधवा विवाह के समर्थक थे पर हिन्दू समाज विधवा विवाह का विरोधी था। गांधी जी युवावस्था में विधवा हुई सभी स्त्रियों का विवाह सार्थक मानते थे और कहते थे कि जिस समाज में स्त्रियों के प्रति आदर भाव होता है, वह समाज सुख समृद्धि की खान होता है।

(6) मद्यनिषेद से सम्बन्धित गांधी जी के विचार :–

गांधी जी की मान्यता थी कि किसी भी प्रकार के मादक पदार्थ का उपयोग यदि समाज में होता है तो उस समाज की व्यवस्था सुचार– रूप से नहीं चल सकती। नशे की लत उन नौजवानों को तबाह करती है जिन पर उज्जवल भविष्य निर्भर है। आपने कहा कि ''मैं भारत का गरीब होना पसंद करूंगा लेकिन मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि हमारे हजारों लोग शराबी हों।''

डॉ. अम्बेडकर समाज सुधारक के रूप में :–

डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक चिनतन मानवतावाद की धारणा से अनुप्रेरित था। उनके सामाजिक विचारों पर उन परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिनका सामना उन्हें एक अछूत महार होने के कारण करना पड़ा। यही कारण है कि उनके सामाजिक विचार मूलतः पारम्परिक वर्ग व्यवस्था की आलोचना से सम्बन्धित है। जिसके कारण अस्पृश्यता अस्तित्व में आई। अतः वर्ण व्यवस्था को शोषण और विषमता का कारण मानते हुए उन्होनें इसके विरोध में विचार प्रस्तुत किए।

1. सामाजिक सुधारों को प्राथमिकता :–

डॉ. अम्बेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक न्याय का उद्देश्य प्राप्त होने के बाद ही आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाना चाहिए। अतः सामाजिक सुधारकों को अम्बेडकर ने सदैव अपनी प्राथमिकताओं में पहला स्थान प्रदान किया। समाज सुधार के अन्तर्गत अम्बेडकर ने पारिवारिक व्यवस्था का सुधार और धार्मिक सुधारों को सम्मिलित किया।

2. वर्ण व्यवस्था का विरोध :–

अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था के विरोधी थे और इसे समाप्त करना चाहते थे। उनका मत था कि वर्ण व्यवस्था विभिन्न सामाजिक बुराईयों की जड़ है। अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को

छुआछूत, ऊँच–नीच और भेदभाव का आधार माना। उनका मत था कि वर्ण व्यवस्था को समाप्त किए बिना समाज सुधारकों की दिशा में कोई प्रगति संभव नहीं है। उन्होंने गीता में उल्लेखित गुण आधारित वर्ण व्यवस्था का भी खण्ड किया।

3. जातिप्रथा का विरोध :–

अम्बेडकर जाति व्यवस्था के भी कटु आलोचक थे। वे इसे समाज की एकता की दृष्टि से घातक मानते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति अपने ज्ञान और गुणों से महान बनता है, किसी जाति या कुल विशेष का उससे कोई संबंध नहीं है। उन्होंने कहां जातियां समाज के आर्थिक और सामाजिक विकास में बाधक है अतः इन्हें समाप्त कर देना चाहिए।

4. अस्पृश्यता का विरोध :–

अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था के लिए ब्राह्मण वर्ग के वर्चस्व को उत्तरदायी ठहराया अस्पृश्यता की उत्पत्ति के लिए भी वे आंशिक रूप से ब्राह्मण वर्ग को उत्तरदायी मानते थे। उनका मत था कि छुआछूत, ब्राम्हणवाद, और बौद्धधर्म के मध्य संघर्ष के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई। अम्बेडकर इस विचार को नकारते है कि दलित मूलतः आर्य जाति के नहीं थे। उनका मत था ऐसे लोग जो बिखरे हुए थे। उनका भी अस्तित्व था।

5. स्त्री–पुरुष समानता के पक्षधर :–

अम्बेडकर ने भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा की आलोचना की। उनका विचार था कि समाज में महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार और स्तर प्राप्त होना चाहिए। वे स्त्री शिक्षा पर विशेष रूप से बल देते थे। उन्होंने स्त्रियों के सम्पत्ति संबंधी अधिकार का पक्ष लेते हुए कहा कि स्त्री का अपने पिता और पति की सम्पत्ति पर अधिकार होना चाहिए।

6. पुरोहितवाद की आलोचना :–

हिन्दू धर्म में पुरोहित वर्ग की विशेष महत्ता प्रदान की गई है। पुरोहित धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों को सम्पन्न कराता है। राजाओं के दरवारों में विभिन्न धार्मिक क्रियाएं सम्पन्न कराने के फलस्वरूप पुरोहितों को विविध रूपों में दान व सुविधायें प्राप्त हुई।

7. स्वतंत्रता समानता और भ्रातृत्व पर आधारित समाज के पक्षधर :–

अम्बेडकर का स्वप्न स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित समाज की स्थापना का था। उनका विचार था कि मात्र स्वतंत्रता आदर्श समाज के निर्माण के लिए पर्याप्त नहीं हैं। उसके साथ समानता का अस्तित्व होना भी आवश्यक है स्वतंत्रता और समानता मिलकर ही व्यक्ति के नैतिक और भौतिक जीवन में सुधार कर सकती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रविन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 6 मई सन् 1861 ई. को बंगाल के एक शिक्षित, धनी तथा सम्मानित परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा भार प्रायः उनके पिता महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर के ऊपर ही रहा। देवेन्द्रनाथ जी ने अपने प्रिय पुत्र को संस्कृत पढ़ाई तथा भारतीय दर्शन एवं नक्षत्र–विज्ञान की शिक्षा भी दी।

जीवन दर्शन

रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन दर्शन पर उनके धार्मिक, दर्शनयुक्त तथा सुसंस्कृत परिवार का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने आदर्शवादी दर्शन को अपनाया और सत्य, शिव तथा सुन्दरम् जैसे आध्यात्मिक मूल्यों में अटल विश्वास करते हुए आध्यात्मिकता को प्राप्त करना मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य माना। स्मरण रहे कि आदर्शवादी होने के नाते टैगोर ईश्वर की सत्ता को अवश्य स्वीकार करते थे। परन्तु उन्होंने ईश्वर को केवल सर्वोच्च मानव के रूप में स्वीकार किया तथा सृष्टि को उसकी अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण किया, वस्तुस्थिति यह है कि टैगोर अद्वैत वादी थे।

टैगोर का शिक्षा दर्शन

टैगोर का विश्वास था कि प्रकृति, मानव तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में परस्पर मेल एवं प्रेम हैं, अतः सच्ची शिक्षा के द्वारा वर्तमान की सभी वस्तुओं में मेल और प्रेम की भावना विकसित होनी चाहिये। टैगोर के समय की क्रमबद्ध तथा निष्क्रिय शिक्षा का समाज की आवश्यकताओं से मेल नहीं था । अतः उन्होंने तत्कालीन शिक्षा का घोर विरोध किया और बताया कि सच्ची शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह बालक को जीवन तथा विश्व के स्वर के मिलन से पूर्णतया अवगत कराये तथा दोनों के मेल के मध्य सन्तुलन स्थापित करे टैगोर ने इस आदर्श को अपने विश्वभारती में पूरा किया।

टैगोर का विश्वास था कि शिक्षा प्राप्त करते समय बालक को स्वतंत्र वातावरण मिलना परम आवश्यक हैं।

उपर्युक्त बातों से पता चलता है कि ये 20वीं शताब्दी के महान सुधारक थे। इन्होंने पूरे तन–मन से समाज की सेवा की। इन्होंने समाज में व्याप्त बुराईयों का घोर खण्डन किया।

UNIT-V

5.1 शिक्षा का अर्थ :–

व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक अनवरत प्रक्रिया है। बालक जैसे ही एक नवजात असहाय शिशु के रूप में जन्म लेता है व जब तक वह मृत्यु सैया पर चिरंतर के लिए विराजमान नहीं हो जाता कुछ ना कुछ सीखता रहता है और जीवन के अनुभवों से सीखता ही शिक्षा है।

समाज कार्य शिक्षा :–

समाज कार्य के क्षेत्र में शिक्षा का बहुत ही व्यापक महत्व है। एक सामाजिक कार्यकर्ता को शिक्षित होना चाहिये तथा उसे किसी विश्वविद्यालय या संस्था द्वारा प्रशिक्षण लेना चाहिए तथा उसके पास शिक्षा ग्रहण करने का प्रमाणिक प्रमाण पत्र होना चाहिये। वर्तमान समय में समाज कार्य शिक्षा का महत्व बढ़ गया है लोग इसके प्रति जाग्रत हो रहे हैं तथा समाज कार्य शिक्षा से जुड़ रहे हैं।

समाज कार्य शिक्षा ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा समाज में व्याप्त बुराईयों, कुरीतियों समाज में व्याप्त समस्याओं को किस प्रकार से हल किया जा सकता है और समाज में इन समस्याओं से किस प्रकार निजात पाया जा सकता है। यह समाज कार्य शिक्षा में बतलाया जाता है। वर्तमान समय में कई जगहों पर समाज कार्य शिक्षा के लिये शिक्षण संस्थान खोले जा चुके हैं। जिनमें समाज कार्य शिक्षा प्रदान की जा रही है। वर्तमान समय में समाज कार्य की शिक्षा ग्रहण करने के लिये समाज कार्य शिक्षण संस्थाओं में जाकर समाज कार्य शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। समाज कार्य शिक्षा का सर्वप्रथम कॉलेज मुंबई में टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ मुंबई नाम से खोला गया। जहां पर समाज कार्य शिक्षा प्रदान की जाती थी ऐसी शिक्षण संस्थानों में समाज के इस साहित्य युवक जो समाज कार्य करना चाहते हैं इन शिक्षण संस्थानों में जाकर समाज कार्य की शिक्षा ग्रहण करते हैं और प्राप्त प्रशिक्षण के माध्यम से वे समाज में मनाकर इस प्रशिक्षण का समुचित प्रयोग कर समाज कार्य करते हैं। समाज के लोगों को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक करते हैं और इन समस्याओं को निपटाने का रास्ता बताते हैं कि किस तरह से वे समाज में रहते हुये इन समस्याओं से निजात पा सकते हैं।

वर्तमान सामाजिक पर्यावरण :–

वर्तमान समय में समाज कार्य के लिये समाज में व्यापक स्तर पर कार्य हो रहे हैं। सामाजिक पर्यावरण इस तरह का हो गया है कि लोग समाज कार्य के महत्व को समझने लगे हैं तथा समाज कार्य करने वाले व्यक्ति का पूरा सहयोग दे रहे हैं तथा उसके द्वारा कही हुई बातों को मान रहे हैं फिर भी समाज में सभी लोग समाज कार्य से संतुष्ट नहीं है

और सामाजिक वातावरण पूर्ण रूपेण समाज कार्य के हक में नहीं है। सामाजिक वातावरण में निवास करने वाले लोग कुछ इसके पक्ष में हैं तथा कुछ विपक्ष में है। फिर भी देखा जाये तो वर्तमान में सामाजिक वातावरण में समाज कार्य का महत्व बढ़ता जा रहा है। लोग इसके प्रति आकर्षित हैं। समाज कार्य की शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। वर्तमान सामाजिक वातावरण को देखा जाये तो समाज कार्य की शिक्षा देने के लिये उन्हें प्रशिक्षण देने के लिये कुशल बनाने के लिये कुछ अनेक शिक्षण संस्थान खोले जा रहे हैं। जिसमें इस शिक्षा को ग्रहण करने वाले लोग आकर्षित एवं प्रभावित होकर इन शिक्षण संस्थानों में जाकर प्रशिक्षण लेते हैं व शिक्षा ग्रहण करते हैं।

सामाजिक सुरक्षा में समाज कार्यकर्ता की भूमिका :–

समाज में निवास करने वाले लोगों को समाज के द्वारा कुछ अधिकार व स्वतंत्रता प्रदान किये गये हैं और समाज में निवास करने वाले लोगों को इन अधिकारों व स्वतंत्रताओं का उपयोग कर रहे हैं। यदि समाज में ही निवास करने वाले लोगों के द्वारा इन अधिकारों का हनन होता है तो जिस व्यक्ति के अधिकारों व स्वतंत्रताओं का हनन हो रहा है। तब उस व्यक्ति को इन अधिकारों व स्वतंत्रताओं की लिये आवश्यकता होती है। तब एक सामाजिक कार्यकर्ता उस व्यक्ति की अधिकारों व स्वतंत्रताओं की सुरक्षा के लिये आवश्यक कदम उठाता है। वह उसे उस अधिकारों के बारे में जानकारी देता है समझाता है कि अधिकारों को किस प्रकार से सुरक्षित कर सकता है तथा संविधान के द्वारा उसे कौन–कौन से अधिकार व स्वतंत्रतायें प्राप्त हैं वह व्यक्ति में आत्म विश्वास पैदा कर देता है जिससे वह अपने अधिकारों व स्वतंत्रताओं के प्रति सजग हो जाता है व अपने अधिकारों की रक्षा स्वयं करने लगता है।

समाज कार्य कल्याण सेवाओं के द्वारा उपचार एवं पुनर्वसन :–

भारत सरकार द्वारा समाज को सशक्त बनाने के लिये अनेक प्रकार की कल्याणकारी योजनायें चलाई जा रही हैं। समाज में व्याप्त बुराईयों व समस्याओं को उपचार इन्हीं कल्याणकारी योजनाओं के द्वारा किया जा रहा है। जैसे–

(1) बालकों के कल्याण के लिये व बालकों की समस्याओं के उपचार के लिये बाल कल्याण जिसमें बाल शिक्षा, पौष्टिक भोजन, अपंग बालक, गूंगे व बहरे विकृत मस्तिष्क में विचार करने वाले व्यक्ति आदि का उपचार तथा उनके रोकथाम के लिये ये कार्य बाल कल्याण योजनाओं के द्वारा किया जाता है।

(2) महिला कल्याण के अंतर्गत महिलाओं में व्याप्त समस्याओं के उपचार के लिये महिला कल्याण की व्यवस्था की गई। जिसमें परिवार नियोजन योजना, श्रम जीवी महिलाओं के लिये निवास गृह, ग्रामीण क्षेत्रों में कल्याण सेवायें, शिक्षा में प्रगति, स्वास्थ्य से संबंधित सभी समस्याओं का उपचार इन्हीं योजनाओं श्रमजीवी महिलाओं

के लिये निवास ग्रह, ग्रामीण क्षेत्रों में कल्याण सेवायें शिक्षा में प्रगति, स्वास्थ्य से संबंधित सभी समस्याओं का उपचार इन्हीं योजनाओं के द्वारा किया जाता है।

(3) युवक कल्याण सेवाओं के अंतर्गत युवकों में व्याप्त समस्याओं के उपचार के लिये युवा कल्याण संगठन बाल स्काउट्स आंदोलन बालिका निर्देशित आंदोलन, भारत स्काउट्स एवं गाइड संगठन, राष्ट्रीय क्रेडिट कार्टस आदि के द्वारा युवकों की समस्याओं का उपचार किया जाता है।

(4) परिवार कल्याण सेवाओं में परिवार कल्याण के लिये पहली संस्था 1950 में बंबई में स्थापित की गई। परिवार की समस्यायें जैसे बेकारी अस्वस्थ्यता वैवाहिक व पारिवारिक संघर्ष बाल अपराध युवावस्था की समस्यायें आदि से निपटने के लिये मनोचिकित्सा के केन्द्र बाल न्यायालय कास्टर ग्रह, चिकित्सालय आदि खोले गये हैं।

पुनर्वसन :–

समाज में व्याप्त कई ऐसी समस्यायें आ जाती हैं कि लोगों को एक जगह से दूसरे जगह के लिये एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाना पड़ता है। जिससे उनकी सारी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। शासन एक स्थान से दूसरे स्थान लाने वाले लोगों के कल्याण के लिये अनेक कल्याणकारी योजनायें चल रहीं हैं। एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में बसना पुनर्वसन कहलाता है। जिन लोगों का पुनर्वसन हुआ है उन लोगों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन पर पुनर्वसन का बुरा प्रभाव ना पड़े तथा उन्हें अपना जीवन संचित रूप से बिताने के लिये कोई परेशानी ना आये तथा जो भी परेशानी आये उन परेशानियों से निपटने के लिये योजनायें चल रही हैं तथा उन योजनाओं को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये शासन द्वारा बहुत से प्रयास भी किये जा रहे हैं जो की सराहनीय हैं।

शासन द्वारा जो योजनायें चलाई जाती हैं उनका उद्देश्य मानव का विकास होता है। शासन द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनायें चलाई जा रही हैं जोकि निम्नलिखित हैं, जैसे– बाल कल्याण, महिला कल्याण, युवा कल्याण, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य बीमा योजना अपाहिजों के लिये तथा पुनर्वसन से प्रभावित हुये लोंगो के कल्याण के लिये शासन द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनायें चलायी जा रही हैं तथा सामाजिक कार्यकर्ता भी पुनर्वसन से प्रभावित हुये लोगों की हर तरह से सहायता करने की कोशिश की जाती है तथा प्रयास किये जाते हैं।

5.2 समाज कार्य के उपागम :–

1. मनो सामाजिक उपागम (Psycho-Social approach) :

समाज कार्य में ज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ इसके सिद्धांतों एवं प्रत्ययों में भी परिवर्तन होता रहा है। सन् 1937 ई. में गार्डन हैमिल्टज ने पहला लेख 'बेसिक कान्सेप्ट्स इन सोशल वर्क लिखा। यही प्रत्यय आगे चलकर निदानात्मक सम्प्रदाय के नाम से जाना जाने लगा। इनके अनुसार मनोसामाजिक सिद्धांत की प्रमुख विशेषता है ''विचार व्यवस्था का खुलापन' इसमें नये ज्ञान, नवीन आंकड़ों तथा नये अनुभवों के द्वारा परिवर्तन आता रहता है।''

मनोसामाजिक उपागम का विकास रिचमण्ड मेरी के कार्यों से हुआ। उन्होंने अहं मनोविज्ञान तथा सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। धीरे–धीरे इस उपागम में सामाजिक, आर्थिक घटनाओं का प्रभाव पड़ा जिसमें परिवर्तन आया। सन् 1926 ई. के लगभग क्रामक का मनोविश्लेषण का सिद्धांत इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। इसके अतिरिक्त मेरियों क्रेन वर्धी न्यूयार्क स्कूल ऑफ सोशल वर्क, वेटसे लिब्बे फेमिली सोसायटी आफ फिलकेल्किया, गार्डन हैमिल्टन, बेध्था रिनोल्ड, चारलेट तावले, फ्लोरेन्स के, फर्नलोरी, लसले आस्टिन, एनेट गैरेट आदि के कार्यों ने मनोसामाजिक उपागम के विकास में सहयोग दिया।

वैयक्तिक सेवा कार्य उपचार तीन प्रकार के होते हैं–

1. व्यक्ति में परिवर्तन
2. सामाजिक या अन्तर्वैयक्ति पर्यावरण में सुधार या परिवर्तन अथवा
3. दोनों में परिवर्तन

इस प्रक्रिया का मुख्य कार्य सेवार्थी, सेवार्थी कार्यकर्ता तथा दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्ति के बीच होता है तथा कुछ निश्चित सेवायें प्रदान की जाती हैं। संचार प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। सेवार्थी अपनी समस्याओं को समझे समाधान में हिस्सा लें। इस उद्देश्य की प्राप्ति करना कार्यकर्ता का उद्देश्य होता है। व्यक्ति के साथ कार्य करने का उद्देश्य सेवार्थी को परिस्थित के स्थान में वृद्धि, दूसरों तथा अपने विषय में अधिक से अधिक ज्ञान, संबंध में सुधार कार्यकर्ता सेवार्थी का उद्देश्यपूर्ण संबंध स्थापन उपचार प्रक्रिया के द्वारा चिन्ता, भय तथा उग्र भावनाओं का स्पष्टीकरण। यह विश्वास किया जाता है कि वैयक्ति सेवाकार्य उपचार द्वारा व्यक्तित्व में परिवर्तन तथा विकास संभव हो सकता है तथा उपचार के माध्यम से पर्यावरणीय परिवर्तन अनुकूलन को प्रोत्साहन देता है।

2. समस्या समाधान उपागम (Problem salving approach) :–

समस्या समाधान उपागम का विकास हेलेन हेरिस, फर्लेमैन द्वारा शिकागो विश्वविद्यालय के समाज कल्याण प्रशासन के तत्वाधान में सन् 1957 में हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार सेवार्थी चाहे वह व्यक्ति को अथवा परिवार दोनों की क्षमताओं में वृद्धि करना सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य है। सेवार्थी की दो प्रकार की समस्यायें प्रायः होती हैं, संबंधों को स्थिर रखने तथा स्थायित्व प्रदान करने में समस्या, भूमिका पूरी करने में समस्या/समस्या का आवास उस समय होता है जब व्यक्ति के अपने समरूा समाधान के तरीके समस्या समाधान करने में असफल हो जाते हैं। अतः वह संस्था में मनोवैज्ञानिक, भौतिक, सामाजिक अथवा अन्य प्रकार की सहायता के लिये आता है जिससे समस्या का समाधान उचित ढंग से कर सके।

समान्यतः वैयक्तिक सेवा कार्य का वही उद्देश्य है जो समाज कार्य का उद्देश्य है। व्यक्ति की सहायता करना जिससे वह सामाजिक रचनात्मक तथा वैयक्तिक संतोषप्रद जीवन प्राप्त कर सके। समस्या समाधान का प्रारूप का यह दृढ़ विश्वास है कि जीवन प्राप्त कर सके। समस्या समाधान का प्रारूप का यह दृढ़ विश्वास है कि जीवन ही समस्या समाधान करने की प्रक्रिया है। जीवन के प्रत्येक स्तर पर परेशानियां आती है। प्रत्येक क्षण नयी–नयी समस्याओं से जूझना पड़ता है। इसके लिये उसे नयी प्रविधियों एवं ज्ञान की आवश्यकता होती है जिससे वह इनका समाधान कर सके। कभी–कभी ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जब वह अपने उत्तरदायित्व का पालन सफलतापूर्वक करने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक कार्यकर्ता व्यक्ति की सहायता करता है जिससे वह कार्यों एवं संबंधों को पूरा करने योग्य हो जाता है और स्वयं में दक्षता आ जाती है।

3. सेवा कार्य का कार्यात्मक उपागम (Functional approach) :–

कार्यात्मक उपागम का विकास पेन्सल वानिया के समाज कार्य स्कूल में सन् 1930 ई. में सैद्धांतिक उपागम के रूप में सामाजिक वैयक्तिक सेवा के लिये किया गया और धीरे–धीरे इसका उपयोग समाज कार्य के सभी प्रणालियों में किया जाने लगा। कार्यात्मक उपागम तथा निदानात्मक उपागम में अंतर तीन स्तरों पर हैं जिनका विवरण हम यहां कर रहे हैं।

1. व्यक्ति की प्रकृति का ज्ञान
2. समाज कार्य के उद्देश्य का ज्ञान
3. प्रक्रिया प्रत्यय का ज्ञान

पेन्सलवानिया स्कूल द्वारा इस उपागम का विकास किया गया। 19वीं शताब्दी का उत्तरार्थ में फ्रायड के समर्थकों ने अहं मनोविज्ञान पर बल दिया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यक्ति अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करता है।

ओटो रैक ने नया दृष्टिकोण प्रतिपादित किया तथा कार्यात्मक सम्प्रदाय का विकास किया उन्होंने इच्छा पर विशेष जोर दिया तथा कहा कि इच्छा शक्ति ही व्यक्ति को नियंत्रित एवं संचालित करती है, जैसे– ई टैफट, प्रोफेसर सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य पेन्सलवानिया स्कूल आफ सोशल वर्क ने अपने शोध प्रबन्ध के द्वारा संस्था के कार्यों का उपयोग समाज कार्य के कार्य तथा सहायता प्रक्रिया में संबंध स्थापित किया। राबिन्सन ने कार्यात्मक सिद्धांतों को समाज कार्य शिक्षण में उपयोग किया। इसके अतिरिक्त आप्टेकर डावले फाट्ज, गिलपिन, फिलिफ्स, लेविस आदि ने इस दिशा में विशेष योगदान किया।

4. परिवार चिकित्सा उपागम (Family Therapy approach) :–

व्यक्ति सामाजिक संबंधों का अभिन्न अंग है। संबंधों से प्रथक् वह न तो मनोवैज्ञानिक एकरूपता प्राप्त कर सकता हैं और न ही मानवीय दशाओं की समझने की योग्यता उत्पन्न कर सकता है। उसका अस्तित्व, विकास व व्यवहार उसके तथा पर्यावरण के मध्य अन्तक्रिया पर निर्भर होता है। वह एक जैविकीय मनोसामाजिक जटिलता है जिसके तीनों अंगों का प्रथक्कीकरण असम्भव है अर्थात् व्यक्ति के तीन अभिन्न अंग हैं।

I. जैवकीय
II. मनौवैज्ञानिक
III. सामाजिक

वह मनोसामाजिक स्वरूप परिवार इकाई के माध्यम से प्राप्त करता है।

आदिकालीन सरल समाजों से लेकर वर्तमान जटिल समाजों तक परिवार सामाजिक संगठन की एक आवश्यक इकाई रही है। इसका जन्म संभवतः तभी हुआ जब व्यक्ति का हुआ। क्योंकि मानव समाज में परिवार ही एक ऐसी सामाजिक आधारभूत इकाई है जिसके अंतर्गत तथा जिसके द्वारा व्यक्ति पाशविक प्रवृत्तियों का शोधन तथा समाजी मृत का सामाजिक प्रकृति प्राप्त करने में सफल हो सका है।

अतः परिवार एक सार्वभौतिक संस्था है और जिसका विकास सामाजिक जीवन से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति के अनिवार्य साधन के रूप में हुआ है।

5. संकट कालीन हस्तक्षेप प्रारूप (Crisis Intervention Model) :–

संकट कालीन हस्तक्षेप या मध्यस्थता एक लघु वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा है जिसकी उपयोगिता वर्तमान समय में अधिक समझी जाने लगी है। यद्यपि यह कोई म०पू० सैद्धांतिक

तथा व्यवहारिक प्रारूप नहीं है और न ही मन मान्यताओं एवं विशेष परिस्थितियों का स्पष्टीकरण किया गया है। परन्तु यह प्रारूप उन व्यक्तियों एवं परिवारों की सहायता करने का उद्देश्य रखता है जो संकट काल से गुजर रहे हैं या ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं जहां पर तुरंत सहायता की आवश्यकता है। इस प्रारूप का उपयोग आज समाज कार्य एवं मानसिक स्वास्थ्य दोनों क्षेत्रों में किया जा रहा है।

सन्दर्भ–सूची

1. ग्रामीण विकास एवं प्रबंधन – डॉ. गुरूदेव उपाध्याय, बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा
2. धर्म तत्व का दर्शन और मर्म – ब्रह्मवर्चस, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
3. पर्यावरण शिक्षा – आर. ए. शर्मा, विनय रखेजा, लालबुक डिपो, निकट गवर्नमेंट कॉलेज, मेरठ।
4. भारतीय समाज – डॉ. अशोक डी. पाटिल, डॉ. एस. एस. भदौरिया, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रविन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल (म.प्र.)।
5. भारत में ग्रामीण समाज – डॉ. अमित अग्रवाल, विवेक प्रकाशन,जवाहर नगर, दिल्ली–7।
6. व्यवसायिक समाज काय – डॉ. ए. एस. इनाम शास्त्री, गुलसी सोशल पब्लिकेशन, वाराणसी
7. समाज कार्य – जी.आर. मदान, विवेक प्रकाशन, जवाहर नवार, दिल्ली–7।
8. समाज कार्य – तेजस्कर, ओजस्कर पाण्डेय, भारत बुक सेंटर – 17, अशोक मार्ग, लखनऊ।
9. समाज आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म – डॉ. सुस्मिता पाण्डेय, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी रविन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल।
10. समाज शास्त्रीय अवधारणाय – डॉ. अशोक डी. पाटिल, डॉ. एस. एस भदौरिया, म.प्र. ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल।
11. सामाजिक व्यक्तिक सेवा काय – डॉ. प्रयागदीन मिश्र, डॉ. सच्चिदानन्द पाठक, निर्देशक उ.प्र. हिन्दी संस्थान,लखनऊ।
12. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज – डॉ. सरोज सक्सेना, साहित्य प्रकाशन, शास्त्रीय आधार, आगरा।

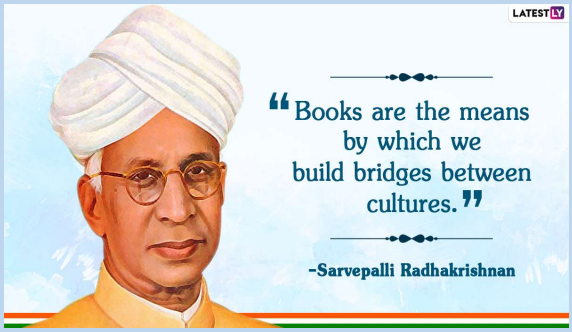

Center for Distance Learning & Continuing Education

MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA

Chitrakoot, Satna (M.P.)

E-mail : directordistancemgcgv@gmail.com